रामवृक्ष बेनीपुरी

रामवचन राय

H
814.8
B 437 R

भारतीय
साहित्य के
निर्माता

H
814.8
B437R

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक इसे लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

रामवृक्ष बेनीपुरी

लेखक
रामवचन राय

साहित्य अकादेमी

Ramvriksh Benipuri : A monograph in Hindi by Dr. Ram Bachan Rai on modern Hindi writer. Sahitya Akademi (1995), Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

Library IIAS, Shimla
H 814.8 B 437 R
00094857

प्रथम संस्करण : 1995

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
304 & 305 अन्ना सालई, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, बम्बई 400 014
ए डी ए रंगमंदिर, 109, जे.सी.मार्ग, बंगलौर 560 002

H
814.8
B437R

Indian Institute of Advanced Study
94857
13/3/2000

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN-81-7201-974-2

मुद्रक : मोना इन्टरप्राइज़ज, नवीन शाहदरा, दिल्ली

अनुक्रम

1.	**जीवन-वृत्त और रचना-कर्म**	1
2.	**'42 की अगस्त क्रांति : बिहार और बेनीपुरी**	12
3.	**बेनीपुरी का साहित्य**	19
4.	**हिन्दी-पत्रकारिता और बेनीपुरी**	40
5.	**शैलीकार बेनीपुरी**	53
	परिशिष्ट	
	बेनीपुरी के जीवन के प्रमुख घटना-क्रम	57
	बेनीपुरी की रचनाओं की सूची	61

1

जीवन-वृत्त और रचना-कर्म

रामवृक्ष बेनीपुरी साहित्य-जगत में आधुनिक हिन्दी गद्य के विशिष्ट स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हैं। गद्य की विभिन्न विधाओं—कहानी, नाटक, निबंध, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, जीवनी आदि में इन्होंने महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं। बेनीपुरी जी का जन्म बिहार में मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के कटरा थानान्तर्गत बेनीपुर गाँव में सन् 1902 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री फुलवंत सिंह तथा पितामह का नाम श्री यदुनंदन सिंह था। बचपन में ही इनके माता-पिता का निधन हो गया। इसलिए इनका पालन-पोषण ननिहाल में हुआ। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, अक्षरारम्भ तो गाँव की पाठशाला में ही हो गया था, किन्तु प्राथमिक शिक्षा विधिवत् ननिहाल के गाँव बंशीपचरा में हुई। इसके बाद ये अपने बहनोई के पास मुज़फ़्फ़रपुर चले आये और यहीं भूमिहार ब्राह्मण कालेजियट स्कूल में नाम लिखाया। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की 'विशारद' परीक्षा में उत्तीर्ण की। इनकी प्रथम रचना सन् 1916 ई. में कानपुर से प्रकाशित पत्रिका 'प्रताप' में छपी। जब ये मैट्रिक में थे, देश में गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन चल रहा था। बेनीपुरी ने गाँधी जी के प्रभाव में सन् 1920 ई. में नियमित शिक्षा का परित्याग कर दिया और आन्दोलन में कूद पड़े। उस समय से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक इनका जीवन राजनीतिक गतिविधियों और संघर्षों का जीवन रहा।

सन् 1928-29 ई. में बेनीपुरी ने अपने मित्र गंगाशरण सिंह और रामनन्दन मिश्र के साथ मिलकर पटना में, पटना कालेज के सामने, 'युवक-आश्रम' की स्थापना की। छात्रों और युवकों को संगठित कर राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने का यह एक मंच था। यहाँ गंगा बाबू के साथ बेनीपुरी की नियमित बैठकें जमती थीं, जहाँ नयी पीढ़ी के लेखक, पत्रकार और युवजन उपस्थित होते थे। इस संगठन की ओर से 1929 ई. में बेनीपुरी ने 'युवक' नामक मासिक-पत्र का प्रकाशन किया, जिसके वे सम्पादक भी थे।

बिहार में यह दौर किसान-आन्दोलन के लिए चर्चित था। 'युवक' पत्र के द्वारा बेनीपुरी ने किसान आन्दोलन का समर्थन किया। बिहार में किसान आन्दोलन के नेता थे -- स्वामी सहजानन्द सरस्वती। उन्होंने ज़मींदारों के जुल्म और शोषण के

ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। उनके प्रयास से नवम्बर, 1929 ई. में सोनपुर मेले में 'बिहार प्रांतीय किसान सभा' के गठन की घोषणा की गयी। स्वामी जी के किसान-आन्दोलन में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साथ रामवृक्ष बेनीपुरी और नागार्जुन भी सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। सन् 1929 से 1939 तक सबने साथ मिलकर एक मंच पर काम किया। उस समय कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टी के लोग बिहार में एक साथ ज़मीदारों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ रहे थे और किसान-आन्दोलन को गाँव-गाँव तक फैलाने के लिए प्रयत्नशील थे।

सन् 1930 ई. में बेनीपुरी के जेल जाने के कारण 'युवक' का प्रकाशन बंद हो गया। जेल से आने के बाद बेनीपुरी पुनः स्वतंत्रता-संग्राम और किसान-आन्दोलन के कार्यों में सक्रिय हो गये। सन् 1933 ई. में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने 'लोक संग्रह' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसके सम्पादक बेनीपुरी बनाये गये। कोई एक साल तक यह पत्रिका निकली। इसके द्वारा किसान-आन्दोलन की गतिविधियों को पूरे राज्य में फैलाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में प्रभारी नेता निर्धारित किये गये थे। स्वामी सहजानन्द सरस्वती का मुख्य कार्य-क्षेत्र मध्य बिहार था। उत्तर बिहार की ज़िम्मेदारी राहुल सांकृत्यायन पर थी, जिनके साथ बेनीपुरी ने कंधे से कंधा मिलाकर काम किया। सन् 1939 ई. में छपरा ज़िले के अमवारी-सत्याग्रह में ज़मींदार द्वारा किये गये आक्रमण में राहुल घायल हो गये और ब्रिटिश हुकूमत द्वारा उन्हें गिरफ़्तार कर जेल भेज दिया गया। बाद में अदालत द्वारा दफ़ा 379 के तहत तीन माह की कैद और तीस रुपये जुर्माने की सज़ा हुई। बेनीपुरी ने सोशलिस्ट पार्टी के साप्ताहिक पत्र 'जनता' में अग्रलेख लिखकर इस घटना का तीव्र विरोध किया और अदालत के फ़ैसले को अविवेकपूर्ण बताया।

इस तरह एक सक्रिय राजनीति-कर्मी और किसान नेता के रूप में स्वामी सहजानन्द सरस्वती, राहुल सांकृत्यायन, कार्यानन्द शर्मा, रामनन्दन मिश्र, गंगाशरण सिंह के साथ रामवृक्ष बेनीपुरी की भूमिका भी बिहार के किसान आन्दोलन में उल्लेखनीय थी।

बेनीपुरी वैचारिक दृष्टि से समाजवादी आन्दोलन से जुड़े हुए थे। सन् 1934 ई. में जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तो उसकी पहली कार्य समिति में बेनीपुरी भी सदस्य थे। बिहार सोशलिस्ट पार्टी (1931) के तो संस्थापकों में वे थे। सन् 1950 ई. में वे बिहार सोशलिस्ट पार्टी के संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष भी थे। सन् 1957 ई. के आम चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में कटरा (मुज़फ़्फरपुर) क्षेत्र से वे बिहार विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

स्वतंत्रता आन्दोलन में रामवृक्ष बेनीपुरी की सक्रिय भूमिका थी। आन्दोलनकारी गतिविधियों के कारण उन्हें कई बार जेल यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। पहली बार 1930 ई. में छह महीने की सज़ा हुई और वे हज़ारीबाग़ जेल में रखे गये। फिर 1932 ई. में डेढ़ वर्ष की सजा उन्होंने हज़ारीबाग़ और पटना कैम्प जेल में काटी। सन् 1937 ई. में वे पुनः गिरफ्तार हुए और तीन महीने की सज़ा हुई। सन् 1939 ई. में दो सप्ताह की सज़ा के लिये उन्हें पटना जेल में रखा गया। 1940 ई. में एक वर्ष की सज़ा हुई और हज़ारीबाग़ जेल में रखे गये। इस बीच एक मुकदमे के सिलसिले में उन्हें छपरा और सीवान की जेलों में भी कुछ-कुछ दिनों तक रहना पड़ा। सन् 1941 ई. में छह महीने की सज़ा उन्होंने हाज़ीपुर और मुज़फ्फरपुर जेलों में बितायी। सन् 1942 ई. के आरम्भिक महीने में वे पुनः गिरफ़्तार हुए और सीतामढ़ी, मधुबनी एवं दरभंगा की जेलों में कुछ समय के लिए रखे गये। इसके बाद अगस्त क्रांति का दौर शुरू हुआ, जिसमें सक्रिय भागीदारी के कारण उन्हें तीन वर्षों के लिए हज़ारीबाग़ जेल में नज़रबंद कर दिया गया। इसी जेल में श्री जयप्रकाश नारायण भी रखे गये थे। बेनीपुरी ने दिवाली की रात में जयप्रकाश नारायण को जेल से भगाने की योजना बनाई थी, जिसमें सफलता भी मिली। इस तरह असहयोग आन्दोलन से लेकर स्वतंत्रता, प्राप्ति तक बेनीपुरी ने एक सक्रिय राजनीतिक जीवन बिताया और समाजवादी नेताओं के बीच राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई।

राजनीतिक सहकर्मियों के अतिरिक्त बेनीपुरी के साहित्यिक मित्रों की भी एक बड़ी मंडली थी, जिसमें बिहार और बिहार के बाहर के अनेक लेखक और पत्रकार शामिल थे। राहुल सांकृत्यायन और नागार्जुन तो किसान आन्दोलन के साथी थे, बेनीपुरी की साहित्यिक अंतरंगता शिवपूजन सहाय और रामधारी सिंह दिनकर से अधिक थी। लहेरिया सराय के पुस्तक भंडार में शिवपूजन सहाय काम करते थे। वहाँ से 'बालक' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो शिवपूजन जी के साथ रामवृक्ष बेनीपुरी भी संपादक-मंडल में सम्मिलित हो गये। उन दिनों सन् 1926-27 में, पुस्तक भंडार की पुस्तकों का मुद्रण काशी में होता था। अतः शिवपूजन सहाय और बेनीपुरी काशी में साथ-साथ रहते थे। लहेरिया सराय (दरभंगा) के पुस्तक भंडार में ही उनका निवास था। उस समय प्रसिद्ध शिल्पी उपेन्द्र महारथी भी इन्हीं लोगों के साथ पुस्तक भंडार में काम करते थे।

सन् 1938-39 में दिनकर जी सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार थे, किंतु कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि फैल रही थी। बेनीपुरी जी 'जनता' साप्ताहिक के सम्पादक थे और अक्सर दिनकर की कविताएँ छापते थे। उन्होंने दिनकर में एक महान कवि की सम्भावनाओं की परख काफ़ी पहले कर ली थी और निरन्तर उन्हें प्रोत्साहित करते रहे। दोनों की घनिष्ठ मित्रता आजीवन बनी रही। दिनकर ने बेनीपुरी को अपनी

काव्य पुस्तक 'सामधेनी' समर्पित करते हुए उन्हें 'आत्मा का शिल्पी' कहकर सम्बोधित किया है।

दिनकर के अलावा डा. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, फणीश्वर नाथ रेणु, ब्रज किशोर नारायण, ललित नारायण सिंह नटवर, उदयराज सिंह आदि बिहार के अनेक साहित्यकार बेनीपुरी जी के निकट सम्पर्क में थे। रेणु में समाजवादी आन्दोलन के प्रति जो रुझान पैदा हुआ, उसका श्रेय साप्ताहिक 'जनता' को है। बेनीपुरी के सम्पादकीय अग्रलेखों का नयी पीढ़ी पर जादुई प्रभाव पड़ता था। रेणु भी समाजवादी विचारों से प्रेरित होकर 1942 के आन्दोलन में उतर आये थे।

मुज़फ़्फरपुर के साहित्यकार ललित नारायण सिंह नटवर से, जो पहले लतीफ़ हुसेन नटवर थे, बेनीपुरी की काफी घनिष्ठता थी। उनके साथ मिलकर बेनीपुरी ने प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की थी। बिहार की साहित्यिक मंडली के अलावा देश के अनेक ख्यातिलब्ध साहित्यकारों एवं पत्रकारों से बेनीपुरी की निकटता थी। इनमें प्रमुख हैं– मैथिलीशरण गुप्त, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, बनारसी दास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, विनोद शंकर व्यास, शांतिप्रिय द्विवेदी, क्षेमचन्द्र सुमन, ओंकार शरद आदि। वस्तुतः बेनीपुरी के सांस्कृतिक व्यक्तित्व के अनेक पहलू थे। इसलिए राजनेता से लेकर अभिनेता तक उनका सम्पर्क–विस्तार था। राष्ट्रीय नेताओं में डा. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्द्धन, यूसुफ़ मेहर अली, डा. राममनोहर लोहिया, आचार्य जे. बी. कृपलानी, अशोक मेहता, मीनू मसानी आदि से उनकी निकटता थी, साथ ही पृथ्वीराज कपूर-जैसे उस युग के महान अभिनेता से भी उनकी घनिष्ठता थी। सन् 1952 ई. में पृथ्वीराज कपूर एक बार मुज़फ़्फरपुर आये और बेनीपुरी जी के अतिथि बने। यह न सिर्फ़ एक नेता और अभिनेता का मिलन था, बल्कि एक नाटककार और एक नाट्य निर्देशक एवं रंगकर्मी के परस्पर सहयोग द्वारा हिन्दी नाटक और रंगमंच को समृद्ध करने का संकल्प-संवाद था।

बेनीपुरी अपनी मित्रता और दोस्त-परस्ती के लिए विख्यात थे। दोस्तों के साथ उनकी बैठकबाज़ी घंटों जमती थी। उनके कहकहे और ठहाकों के सभी कायल थे। डा. लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने उनके विनोदी व्यक्तित्व के विषय में लिखा है — "गोष्ठियों में प्रमुखता बेनीपुरी जी की ही रहती थी। उनकी हँसी, उनका अट्टहास, उनके कहकहे, उनकी भाव-भंगिमा, उनके चुटकुले आदि ऐसे होते थे, जिनसे सबका ध्यान सहज ही वे अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। लिखने में जैसे उछल-कूद कर चलनेवाली, फुदकनेवाली उनकी शैली थी, बोलने की शैली भी उनकी वैसी ही थी। ज़िंदादिल आदमी थे। उनके पास बैठिये तो उठने का मन नहीं होता था।"

बेनीपुरी जब पुस्तक भंडार लहेरियासराय में शिवपूजन सहाय के साथ रहते

थे, उस समय के एक प्रसंग की चर्चा करते हुए मैथिली और हिन्दी के हास्य लेखक हरिमोहन झा ने लिखा है –

> "पान-गोष्ठी जमती थी और पान-पत्ती के साथ-साथ साहित्य-विनोद की वर्षा होती थी। चुटकुले होते थे, लतीफ़े होते थे, कहानियाँ होती थीं। बीच-बीच में बेनीपुरी जी के क़हक़हे लगते थे कि लोग ज़रूरी काम छोड़कर भी रस के लोभ से दौड़ पड़ते थे। उनके अट्टहासों से भंडार की अट्टालिका गूँज उठती थी। एक रात उन्होंने ऐसे ज़ोर का तिमहला ठहाका लगाया कि पड़ोस के वकील साहब ने हर्जाने की नोटिस भेज दी।"

इस तरह बेनीपुरी के व्यक्तित्व के अनेक वैविध्यपूर्ण एवं रंगीन पहलू हैं।

यद्यपि सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों के कारण उनका नियमित अध्ययन बाधित हो गया था, फिर भी उनका स्वाध्याय चलता रहा। 'रामचरितमानस' के पठन-पाठन से साहित्य के प्रति उनकी रुचि विकसित हुई। उन्होंने प्राचीन काव्यों का स्वतः अध्ययन किया। पन्द्रह वर्ष की उम्र में उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विशारद की परीक्षा भी पास की। पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं। किन्तु बेनीपुरी के साहित्यिक जीवन का विधिवत् आरम्भ सन् 1921 ई. में पत्रकारिता से हुआ। वे 'तरुण भारत' पत्रिका (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक बनाये गये। फिर 1922 ई. में 'किसान मित्र' नामक साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक हुए। 1924 ई. में उन्होंने 'गोलमाल' नामक हास्य-व्यंग्य साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक का काम किया। सन् 1926 ई. में उन्होंने 'बालक' मासिक पत्रिका का सम्पादन शुरू किया। बच्चों की इस पत्रिका से उन्हें काफ़ी लोकप्रियता मिली। सन् 1929 ई. में उनके सम्पादन और संचालन में 'युवक' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। स्वतंत्रता आन्दोलन में इस पत्रिका की विशेष भूमिका थी। देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार-प्रसार में इस पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। सन् 1930 ई. में गिरफ़्तार होकर बेनीपुरी जब हज़ारीबाग़ जेल भेज दिये गये तो वहाँ भी उन्होंने 'कैदी' नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली। सन् 1934 ई. में उन्होंने मुज़फ़्फ़रपुर से प्रकाशित 'लोक संग्रह' और खंडवा (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित 'कर्मवीर' में भी कुछ दिनों तक पं. माखनलाल चतुर्वेदी के साथ कार्यकारी सम्पादक का काम किया, किंतु खंडवा में मन नहीं रमा और वे पटना लौट आये। फिर सन् 1935 ई. में उनके सम्पादन में पटना से साप्ताहिक 'योगी' का प्रकाशन शुरू हुआ। किंतु अपनी प्रखर राजनीतिक विचारधारा के कारण 'योगी' में वे नहीं टिक सके। सन् 1937 ई. में उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी की पत्रिका 'जनता' (साप्ताहिक) का सम्पादन किया। उनके सम्पादन में 'जनता' के किसान अंक और शहीद अंक को ऐतिहासिक महत्त्व मिला। सन 1942 ई. के आन्दोलन में गिरफ़्तार होकर पुनः वे हज़ारीबाग़ जेल में

रखे गये। इस बार उन्होंने वहाँ से 'तूफ़ान' नामक हस्तलिखित पत्रिका निकाली। सन् 1946 ई. में आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ मिलकर उन्होंने 'हिमालय' मासिक का सम्पादन शुरू किया। सन् 1948 ई. में आचार्य नरेन्द्र देव के साथ उन्होंने 'जनवाणी' मासिक का सम्पादन किया। सन् 1950 ई. में 'नई धारा' (मासिक) जैसी पत्रिका के वे प्रधान सम्पादक हुए ; साथ ही 'चुन्नू-मुन्नू' (मासिक) नामक बाल पत्रिका का भी उन्होंने सम्पादन किया। इस तरह सक्रिय राजनीतिक जीवन के साथ-साथ बेनीपुरी ने सक्रिय पत्रकारिता का जीवन भी बिताया। उनका पत्रकार उनके भीतर के राजनीतिकर्मी को प्रखर बनाता रहा और उनके राजनीतिकर्मी ने उनके पत्रकार को बेलौस और निर्भीक बनाया। इस दौर में बेनीपुरी ने हिन्दी पत्रकारिता को एक नया तेवर दिया। राजनीतिक घटनाचक्र के विवरण से भिन्न उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता की सुचिन्तित बुनियाद डाली। एक ओर जहाँ बेनीपुरी ने अपने राजनीतिक अग्रलेखों में स्वतंत्रता और समाजवाद की व्याख्या प्रस्तुत की, वहीं भारतीय इतिहास और संस्कृति के सन्दर्भों को लेकर साहित्य की रचना की। उनके व्यक्तित्व में साहित्य और राजनीति का दुर्लभ संयोग मिलता है, जिसका उदाहरण हिन्दी में बहुत कम ही दिखाई पड़ता है।

गद्य साहित्य के अमर शिल्पी के रूप में बेनीपुरी का योगदान काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। सन् 1925 ई. से ही उन्होंने साहित्य रचना शुरू की थी। उन्होंने बच्चों के लिए 'बगुला भगत और सियार पाँड़े' जैसी रोचक पुस्तक लिखी, जो बाल साहित्य का सुन्दर उदाहरण है। दूसरी ओर 'बिहारी सतसई' की टीका भी लिखी, जिसमें गम्भीर विवेचन किया गया है। सन् 1927-28 के बीच उन्होंने 'विद्यापति की पदावली' नाम से विद्यापति के पदों की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की। वहीं 'बिलाई मौसी', 'हिरामन तोता', 'आविष्कार और आविष्कारक' जैसी बाल पुस्तकों की रचना भी की। इसी काल में उन्होंने शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, विद्यापति और लंगट सिंह की जीवनियाँ भी लिखीं। सन् 1930 और 1932 के बीच में लिखी गयी उनकी कहानियाँ 'चिता के फूल' में संगृहीत हुई। सन् 1937 और 1939 के दौर में 'लाल तारा', 'लाल चीन', 'जान हथेली पर', 'फलों का गुच्छा', 'पद चिह्न', 'सतरंगा धनुष', 'झोपड़ी का रुदन' आदि कृतियाँ प्रकाशित हुई। सन् 1940 ई. में 'कैदी की पत्नी' और 'लाल रूस' का प्रकाशन हुआ। इसी तरह 1941-45 के बीच उनकी बहुचर्चित कृतियाँ 'माटी की मूरतें' और 'अम्बपाली' प्रकाशित हुई। सन् 1947 ई. में उन्होंने जयप्रकाश नारायण से सम्बन्धित दो पुस्तकें लिखीं – 'जयप्रकाश : जीवनी', और 'जयप्रकाश की विचार धारा'। इसी समय 'तथागत' और 'चिता के फूल' का भी प्रकाशन हुआ। सन् 1948 से 1950 की कालावधि में इनकी प्रसिद्ध नाट्यकृतियाँ-- 'नेत्रदान', 'सीता की माँ', 'संघमित्रा' – प्रकाशित हुई। 'गेहूँ और गुलाब' नाम से ग्रामीण जीवन और

संस्कृति पर लिखा हुआ इनका शब्द-चित्र भी काफ़ी लोकप्रिय हुआ। बेनीपुरी ने इस अवधि में नई पीढ़ी के लिए प्रेरक साहित्य भी लिखा। यथा 'बेटे हों तो ऐसे', 'बेटियाँ हों तो ऐसी', 'हमारे पुरखे', 'हमारे पड़ोसी', 'पृथ्वी पर विजय', 'प्रकृति पर विजय', 'हम इनकी सन्तान हैं', 'इनके चरण चिह्नों पर', 'अनोखा संसार', 'अपना देश' आदि। सन् 1951 और '52 में बेनीपुरी के यात्रा-वृत्तान्त भी हिन्दी पाठकों के सामने आये, यथा -- 'पैरों में पंख बाँधकर', 'पेरिस नहीं भूलती', 'उड़ते चलो उड़ते चलो'। 1951 में ही बेनीपुरी का 'नया समाज' नामक एकांकी प्रकाशित हुआ। सन् 1954 में 'विजेता' नामक नाटक प्रकाशित हुआ। सन् 1955 ई. से बेनीपुरी ने कुछ और पुस्तकों पर काम शुरू किया, जिसमें उनके संस्मरण और डायरियाँ शामिल हैं यथा – 'ज़ंजीरें और दीवारें', 'धरती की धड़कनें', 'मेरी डायरी', आदि। इस तरह लगभग तीन दशकों तक बेनीपुरी ने निरंतर साहित्य सेवा की।

रामवृक्ष बेनीपुरी का सारा साहित्य अभी बिखरा हुआ है, जिसे ग्रंथावली के रूप में कई खंडों में प्रकाशित किया जा सकता है। वस्तुतः एक समय स्वयं बेनीपुरी ने ग्रंथावली के दस खंडों में प्रकाशन की योजना बनायी थी, किन्तु वह पूरी नहीं हो पाई। इस सम्बन्ध में बेनीपुरी जी से हुई वार्त्ता का उल्लेख करते हुए जगदीश चन्द्र माथुर ने लिखा है – "1953 में एक बार मेरे पास आये और बोले – 'माथुर साहब, पचास से ऊपर हो चला, इसलिए अब कुछ इन्तजाम करना है।' मैंने पूछा– 'किस तरह का इंतज़ाम करने का इरादा है।' बोले – 'मेरे मरने के बाद न मालूम कोई मेरा स्मारक बनाये या नहीं। कौन जाने मेरी ढेर-सी रचनाओं का संग्रह भी प्रकाशित हो या नहीं। इसलिए मैंने सोचा है, मैं स्वयं ही इन दोनों बातों का श्रीगणेश कर जाऊँ। बेनीपुरी ग्रंथावली के प्रकाशन की योजना है। दस खंडों में प्रकाशित होगी। लाइए सौ रुपये का चेक।" मैंने कहा कि सौ रुपये में तो दस खंडों के प्रकाशन की सम्भावना नहीं दीखती। उन्होंने अपनी स्कीम बतायी। पहले खंड के प्रकाशन के पूर्व ही सौ रुपये अग्रिम मूल्य देनेवाले सवा सौ सदस्य बन गये। मैंने भी अपना शुल्क दे दिया। काम चल निकला और सन् 1953 के अंत तक बड़ी सज-धज के साथ बेनीपुरी ग्रंथावली का प्रथम खंड निकल ही गया। दो साल बाद दूसरा खंड। हिन्दी में एक ही लेखक की रचनाओं का संग्रह कई खंडों में चित्ताकर्षक और सुव्यवस्थित रूप में प्रकाशित हो, ऐसा आयोजन मैंने अन्यत्र नहीं देखा। बाद में कुछ तो उनकी बीमारी और कुछ राजनीतिक जंजाल के कारण बेनीपुरी की यह लालसा पूरी नहीं हो पायी कि वे अपने जीवन में ही दस खंडों का प्रकाशन देख सकते।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष-20 अंक 1-5 अप्रैल-अगस्त 1969 ई., पटना)। उस कड़ी में सिर्फ़ दो ही खंड प्रकाशित हो सके। यदि सम्पूर्ण योजना कार्यान्वित हुई होती तो बेनीपुरी का विविध विधाओं में लिखित विपुल साहित्य पाठकों को एक

साथ उपलब्ध हो गया होता। प्रकाशित ग्रंथावली के दो खंडों से उक्त योजना की विस्तृत रूपरेखा सामने आती है। इसके अनुसार पहला कथा-साहित्य से सम्बन्धित है, जिसमें छह रचनाएँ हैं : 1. माटी की मूरतें, 2. पतितों के देश में, 3. लाल तारा, 4. चिता के फूल, 5. कैदी की पत्नी, 6. गेहूँ और गुलाब।

दूसरा खंड बेनीपुरी के नाटकों का है, जिसमें एकांकी एवं रूपक सहित, बारह रचनाएँ हैं : (1) अम्बपाली, (2) सीता की माँ, (3) संघमित्रा, (4) अमर ज्योति, (5) तथागत, (6) सिंघल विजय, (7) शकुन्तला, (8) राम राज्य, (9) नेत्रदान, (10) गाँव के देवता, (11) नया समाज और (12) विजेता।

तीसरे खंड में बेनीपुरी के संस्मरण, निबंध और महत्त्वपूर्ण भाषणों को संकलित किया गया था; यथा (1) ज़ंजीरे और दीवारें, (2) मुझे याद है, (3) मेरी डायरी, (4) नई नारी, (5) सुनिये, (6) मशाल, (7) बन्दे वाणी विनायकौ, (8) कुछ मैं कुछ वे।

बेनीपुरी ने काफ़ी मात्रा में बाल साहित्य की रचना भी की थी। ग्रंथावली के चौथे और पाँचवें खंडों में उनके सम्पूर्ण बाल-साहित्य का समावेश किया गया। चौथे खंड में उनकी सात रचनाएँ थीं : (1) अमर कथाएँ : मनु से गाँधी तक (दो भाग), (2) अमर कथाएँ : लाओत्से से लेनिन तक (दो भाग), (3) हम इनकी सन्तान हैं (दो भाग), (4) पृथ्वी पर विजय (दो भाग), (5) प्रकृति पर विजय (दो भाग), (6) संसार की मनोरम कहानियाँ (दो भाग), (7) इनके चरण चिह्नों पर।

पाँचवें खंड में बाल साहित्य की 14 पुस्तकें रखी गयीं : (1) बगुला भगत, (2) सियार पांड़े, (3) बिलाई मौसी, (4) हिरामन तोता, (5) बेटे हों तो ऐसे, (6) बेटियाँ हों तो ऐसी, (7) शिवाजी, (8) गुरु गोविन्द सिंह, (9) अमृत की वर्षा, (10) बच्चों के बापू, (11) जीवन-जन्तु, (12) अनोखा संसार, (13) झोपड़ी से महल, (14) सतरंगा धनुष।

छठे खंड के अन्तर्गत बेनीपुरी की राजनीतिक टिप्पणियाँ और जीवनियाँ हैं। जैसे : (1) कार्ल मार्क्स, (2) रोजा लक्शेम्बुर्ग, (3) रूस की क्रान्ति, (4) लाल चीन, (5) जयप्रकाश : जीवनी, (6) जयप्रकाश की विचारधारा।

इसके अतिरिक्त बेनीपुरी ने कतिपय साहित्यकारों के सम्बन्ध में भी लिखा और कुछ साहित्यिक कृतियों का सटिप्पण सम्पादन किया। इनमें प्रमुख रचनाएँ हैं: (1) विद्यापति की पदावली, (2) रवीन्द्र भारती, (3) इक़बाल, (4) बिहारी सतसई, (5) जोश।

बेनीपुरी ने देश और विदेश की महत्त्वपूर्ण यात्राएँ भी की थीं। सन् 1951-52 ई. में उन्होंने एक शिष्टमंडल के साथ विश्व के अनेक देशों की यात्रा

की। उनकी इस यात्रा के एक सहयात्री श्री उदयराज सिंह ने उनके सान्निध्य से प्राप्त अनुभव का उल्लेख करते हुए लिखा है -- "बेनीपुरी जी में एक ख़ास बात मैंने यह भी देखी कि विदेश में वे जिस शहर में पहुँचते, वहाँ के मृत साहित्यकारों को श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा जीवित साहित्यकारों से मिलने के लिए लालायित हो जाते। पेरिस में वे वाल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, एमिल जोला, रूसो, बॉलजाक, आस्कर वाइल्ड और अन्य मृत साहित्यकारों और मनीषियों की मज़ारों पर हमें भी साथ ले गये और उन पर फूल चढ़ाकर उनकी बग़ल में खड़े हो गर्व से फोटो खिचवाये। लंदन में स्टीफेन स्पेंडर ने एक प्रीतिभोज दिया, जहाँ हमें इंग्लैंड के सभी प्रमुख साहित्यकारों से मिलाया। उस रात की पार्टी के बेनीपुरी जी ही दूल्हा बन गये और साहित्यकारों से वहाँ की साहित्यिक गतिविधि पर देर रात तक बातें करते रहे। हिन्दी साहित्य की ऐसी बड़ी हस्ती से मिलकर अंग्रेज़ साहित्यकार बहुत प्रभावित हुए और कई एक ने बेनीपुरी जी को अपने घर पर भी आमंत्रित किया।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20 अंक 1-5 अप्रैल-अगस्त 1969, पटना)।

इन यात्रा-वृत्तान्तों की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं : (1) पैरों में पंख बाँधकर, (2) पेरिस नहीं भूलती, (3) उड़ते चलो, (4) मेरे तीर्थ। इसके अतिरिक्त एक लम्बे अरसे तक बेनीपुरी पत्रकारिता से जुड़े रहे। उन्होंने विभिन्न पत्रों और पत्रिकाओं का सम्पादन किया। अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं में उनके अग्रलेख अथवा उनकी साहित्यिक टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं। ऐसी रचनाओं को भी एक साथ संकलित किया जा सकता है। यह सारा साहित्य यदि एक साथ उपलब्ध हो जाय तो बेनीपुरी का मूल्यांकन उनकी सम्पूर्णता में सम्भव हो पायेगा। दिसम्बर, 1953 और फरवरी, 1955 ई. में बेनीपुरी ग्रंथावली के जो प्रथम एवं द्वितीय खंड प्रकाशित हुए थे, वे भी अब सुलभ नहीं हैं। अतः बेनीपुरी की बहुमुखी प्रतिभा का सही मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान समाजवादी नेताओं की अगली पंक्ति में खड़े होकर बेनीपुरी ने अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभायी थी। सन् 1957 ई. से चुनावी राजनीति का एक नया जीवन शुरू हुआ, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। वे विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। किन्तु इसके साथ ही उनकी व्यस्तता और भाग-दौड़ बढ़ती गयी। उनके व्यक्तित्व में राजनीति और साहित्य का जो सम्यक् संतुलन था, वह बाद के दिनों में क़ायम नहीं रह सका। चुनाव की राजनीति अधिक दाँव-पेंच और जोड़-तोड़वाली हो गयी थी, जो बेनीपुरी के सहज-निश्छल व्यक्तित्व से मेल नहीं खाती थी। जगदीश चन्द्र माथुर ने लिखा है -- "सन् 1957 के बाद वे जिस राजनीति में शामिल हुए, वह उनकी तथ्यपरक प्रवृत्ति से सम्बद्ध थी। कुछ अर्से तक तो इन दोनों वृत्तियों की पृथक् सक्रियता को बेनीपुरी निबाह ले गये, लेकिन अंततः उनके

व्यक्तित्व में जो प्रबलतर पक्ष था--यानी भावुक और आवेशपूर्ण, वह उनकी राजनीतिक भूमिका को डुलाने लगा। अपनी कांस्टिटुयेंसी में वे कुछ उसी भाँति इलेक्शन के लिए दौड़-धूप करने लगे जैसे असहयोग आन्दोलन में करते थे या जैसे किसी कल्पना सिद्ध, उल्लासपूर्ण स्थल को पूरा करने में। नतीजा यह हुआ कि राजनीति के शतरंजी और सूझबूझ वाले क्षेत्र में बेनीपुरी का आवेशपूर्ण व्यक्तित्व उछलने लगा। शक्तिपुंज बिखर गया और संतुलन कायम न रह सका। उल्लास का गायक दोनों ही बाज़ी हार गया।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त 1969, पटना)।

बेनीपुरी जी की इच्छा अपने क्षेत्र बागमती में कालेज खोलने और गाँधी-स्वाध्याय मंदिर की स्थापना करने की थी। इसके लिए आवश्यक धनराशि जुटाने और ज़मीन की व्यवस्था करने का भार था। वे रात-दिन इसके लिए गाँव-गाँव घूमने लगे। सन् 1959 ई. के दिसम्बर में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का बिहार के दौरे का कार्यक्रम था। बेनीपुरी जी चाहते थे कि राजेन्द्र बाबू के हाथों जनाढ़ (मुज़फ़्फ़रपुर) में गाँधी- स्वाध्याय मंदिर का शिलान्यास किया जाय। इसके लिए उन्होंने राष्ट्रपति की स्वीकृति भी ले ली, किन्तु स्थानीय कांग्रेसी नेता गण नहीं चाहते थे कि राष्ट्रपति के शुभागमन का श्रेय बेनीपुरी को मिले। इसलिए ज़िले के अधिकारियों ने भी असहयोग करना शुरू किया। राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर प्रयास किया गया कि राष्ट्रपति का कार्यक्रम स्थगित हो जाय, किंतु बेनीपुरी के अथक प्रयत्न और डा. राजेन्द्र प्रसाद की सदाशयता से यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जनाढ़ में राष्ट्रपति द्वारा गाँधी- स्वाध्याय-मंदिर की नींव रखी गयी।

इस बीच घोर मानसिक तनाव और भाग-दौड़ के कारण बेनीपुरी का रक्तचाप काफ़ी बढ़ गया। वे पक्षाघात के शिकार हो गये और उनकी स्मरण-शक्ति लुप्त हो गयी। वाणी ने साथ छोड़ दिया। अपनी वाग्मिता के लिए विख्यात, क़हक़हों और अट्टहासों के लिए बहुचर्चित बेनीपुरी अचानक मौन हो गये। इस दारुण स्थिति में लगभग सात-आठ वर्षों तक वे ज़िन्दगी और मौत से जूझते रहे। अंत में 7 सितम्बर, 1968 ई. को उनका निधन हो गया।

बेनीपुरी के जीवन का अंतिम काल काफ़ी कष्टपूर्ण रहा। यह विधि की कैसी विडम्बना थी कि जिस राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू को अपने इलाके में लाने के लिए बेनीपुरी ने एड़ी-चोटी का पसीना बहाया, राज्य के मंत्रियों, नेताओं और ज़िले के प्रशासनिक अधिकारियों का प्रतिरोध झेला और उनके अथक प्रयास से राष्ट्रपति जब गाँधी स्वाध्याय-मंदिर का शिलान्यास करने आये तो बेनीपुरी स्वागत के दो शब्द भी नहीं कह सके। उसी समय उनकी आवाज़ चली गयी। वे मंच पर मौजूद थे, पर मूक बने हुए। उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू टपक रहे थे और राजेन्द्र बाबू के प्रति

कृतज्ञता में दोनों हाथ जुड़े हुए थे। नियति का यह अत्यंत क्रूर विधान था। जबतक समारोह चला, वे चुपचाप मंच पर विराजमान रहे। राष्ट्रपति ने उनके राजनीतिक जीवन-संघर्ष, त्याग-तपस्या और रचना-कर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनके अचानक बीमार हो जाने पर चिन्ता व्यक्त की। समारोह के बाद वे राजेन्द्र बाबू के साथ ही मुज़फ़्फ़रपुर लौटे और अस्पताल में दाखिल हुए। फिर पटना और दिल्ली में इलाज़ चलता रहा। पर वे पूर्णतः स्वस्थ नहीं हुए। इस दारुण स्थिति में कभी स्मृति लौटती तो वे रोने लगते थे। गाँव के प्रति उनके मन में गहरा लगाव था। मृत्यु से दो दिन पहले तक वे गाँव में ही थे। एक दिन अचानक पत्नी की कलाइयाँ पकड़कर उनकी चूड़ियाँ तोड़ दीं। तबीयत काफ़ी बिगड़ जाने पर बेहोशी की हालत में उन्हें मुज़फ़्फ़रपुर लाया गया, पर उनकी चेतना लौट नहीं पायी। मुज़फ़्फ़रपुर में ही 7 सितम्बर, 1968 ई. को उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

फिर उनकी इच्छा के अनुसार उनका पार्थिव शरीर गाँव ले जाया गया और 'माटी की मूरतों' के बीच उन्हीं के द्वारा रोपे गये मौलसिरी वृक्ष की छाया में उनकी चिता जली।

वस्तुतः बेनीपुरी का व्यक्तित्व साहित्य और राजनीति के बीच एक सेतु-बंध था। उनकी राजनीति भी सत्ता की नहीं, संघर्ष की थी। वे एक सच्चे समाजवादी थे। उनका साहित्य भी लोक चेतना का समुच्चय और लोक-जागरण का अभियान है, जिसके द्वारा वे एक समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करना चाहते थे ; सामाजिक समरसता और साम्प्रदायिक सद्भावना का ऐसा गंगा-जमुनी परिवेश, जिसमें 'माटी की मूरतों' को प्रतिष्ठित किया जा सके।

2

'42 की अगस्त क्रांति : बिहार और बेनीपुरी

रामवृक्ष बेनीपुरी ने समाजवादी नेताओं के साथ मिलकर स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभायी। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के समय ही उन्होंने पढ़ाई छोड़कर आन्दोलन में हिस्सा लेना शुरू किया था और बाद में जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ तो बेनीपुरी उसके सक्रिय सदस्य हो गये। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी के कारण सन् 1930 से ही उनकी जेल-यात्रा शुरू हुई थी, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति तक थोड़े-थोड़े अन्तराल के साथ निरंतर चलती रही। महात्मा गाँधी के आह्वान पर 9 अगस्त, 1942 ई. से 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' का आन्दोलन शुरू हुआ। इस अगस्त क्रांति का ज़बर्दस्त प्रभाव बिहार पर पड़ा। यहाँ समाजवादियों का संगठन पहले से ही मौजूद था। जयप्रकाश नारायण, डा. राममनोहर लोहिया, रामनन्दन मिश्र, सूरज नारायण सिंह आदि नेताओं ने बिहार को ही अपना कार्य-स्थल बनाया था। 8 अगस्त, 1942 ई. को बम्बई में कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में गाँधी जी ने जब 'करो या मरो' का नारा दिया तो उसका व्यापक प्रभाव देश पर पड़ा। बम्बई अधिवेशन में 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' का प्रस्ताव गाँधीजी के कहने पर आचार्य नरेन्द्र देव ने तैयार किया था। उस प्रस्ताव के पारित होने के बाद गाँधीजी ने कोई ढाई घंटे का लम्बा भाषण किया था। अपने भाषण में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था "इस बार आज़ादी से कुछ कम नहीं लेंगे। भले ही इसके लिये कत्ल हो जाना पड़े . . . . मैं वह गाँधी नहीं जो बीच में कुछ चीज़ लेकर लौट आये। अंग्रेजों भारत छोड़ दो के प्रस्ताव को पूरा करेंगे या मरेंगे। आज से तय करें कि आज़ादी लेनी है। नहीं लेंगे तो मरेंगे। आज़ादी डरपोकों के लिए नहीं। मेरी अन्तरात्मा कहती है -- मुझे अकेले ही संसार से लोहा लेना है। मुझे बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़नी हैं। मैं क्यों न जूझूँ ? आजादी कल नहीं, आज ही आनी चाहिए। इसी से मैंने आज कांग्रेस से बाज़ी लगवाई है कि या तो कांग्रेस देश को आज़ाद करेगी या खुद फ़ना हो जायेगी – करो या मरो।"

गाँधीजी के इस वक्तव्य से पूरे देश का मानस आन्दोलित हो उठा। 8 अगस्त की रात में ही अंग्रेज़ों ने गाँधीजी को गिरफ़्तार कर लिया और उनके साथ कांग्रेस के प्रायः सभी बड़े नेता भी गिरफ़्तार हो गये। गाँधीजी की गिरफ़्तारी की ख़बर जंगल

की आग की तरह सारे देश में फैल गयी। लाखों नर-नारी सड़कों पर आ गये। अंग्रेज़ी सत्ता के विरोध में जुलूसों और प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया। जनाक्रोश इतना भयंकर था कि लोग रेल की पटरियाँ उखाड़ने लगे, स्टेशनों, तार-घरों, पोस्ट-ऑफिसों और सरकारी सम्पत्ति को जलाने लगे। अगस्त क्रांति की लहर बिहार के विभिन्न भागों में तीव्रता से फैली। जमशेदपुर, झरिया आदि औद्योगिक क्षेत्रों में हज़ारों कामगारों ने हड़ताल कर दी। मुंगेर, भागलपुर, सारण, मुज़फ़्फ़रपुर, पूर्णिया, संताल परगना आदि जिलों में सरकारी कार्यालयों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। सुदूर देहातों में भी आन्दोलन की लहर पहुँच गयी और सरकारी काम-काज को ठप कर दिया गया। पटना में 11 अगस्त को विद्यार्थियों का विशाल जुलूस निकला और सचिवालय के पूर्वी द्वार पर एकत्र हुआ। कोई ढाई घंटे तक पुलिस के साथ मुक़ाबला हुआ। लाठीचार्ज़ में सैकड़ों विद्यार्थी घायल हुए, किंतु पीछे हटने का किसी ने नाम नहीं लिया। लाठी और अश्रु गैस के बाद पुलिस ने गोली चलाना शुरू किया। फिर भी छात्रों का जत्था सचिवालय के ऊपर झंडा फहराने के लिए आगे बढ़ता गया। सात विद्यार्थी पुलिस की गोली से मारे गये। लेकिन सचिवालय के ऊपर राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया गया।

यह घटना सचिवालय भवन के पूर्वी फाटक पर घटी। पटना के ज़िला मजिस्ट्रेट आर्चर ने पुलिस महानिरीक्षक से परामर्श कर 4 बजकर 47 मिनट पर गोली चलाने का आदेश दिया। पुलिस ने 13 चक्र गोली चलाई, जिसमें सात विद्यार्थी मारे गये। ये सात शहीद थे (1) उमाकांत प्रसाद सिंह (2) रामानन्द सिंह (दोनों राममोहन राय सेमिनरी पटना की ग्यारहवीं कक्षा के छात्र) (3) सतीश प्रसाद झा (पटना कालेजियट स्कूल की ग्यारहवीं कक्षा का छात्र) (4) जगपति कुमार (बी. एन. कालेज के द्वितीय वर्ष का छात्र) (5) देवीपद चौधरी (मिलर हाई स्कूल, पटना की नवीं कक्षा का छात्र) (6) राजेन्द्र सिंह (पटना हाई स्कूल की ग्यारहवीं कक्षा का छात्र) और (7) राम गोविन्द सिंह (पुनपुन हाई स्कूल की ग्यारहवीं कक्षा का छात्र)।

पटना सचिवालय के सामने हुई इस नृशंस घटना ने आग में घी का काम किया। दूसरे दिन 12 अगस्त को बिहार के कोने-कोने में जन-समुद्र उमड़ आया। रेल की पटरियाँ उखाड़ी गयीं, तार काटे गये, सड़क-पुलों को ध्वस्त कर आवागमन बाधित किया गया। कुछ समय के लिए पटना का संचार-सम्पर्क और आवागमन देश के अन्य भागों से बिल्कुल कट गया। बख़्तियारपुर और मोकामा में पुलिस थाने जला दिये गये। मसौढ़ी, नौबतपुर, विक्रम आदि पटना के निकटवर्ती स्थानों पर तोड़-फोड़ की घटनाएँ हुई। आरा में सेना-पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ीं, जिसमें अनेक लोग हताहत हुए। अंग्रेज़ी शासन के कठोर दमन-चक्र के बावजूद आन्दोलनकारी पीछे नहीं हटे। जगह-जगह आन्दोलनकारियों ने थानों, पोस्ट-ऑफिसों और सरकारी इमारतों में आग लगायी और हिंसक प्रदर्शन किया।

मुंगेर ज़िले के खगड़िया में पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें अनेक लोग मारे गये। मुंगेर ज़िले में स्थित पूर्व रेलवे के 27 स्टेशनों में मुंगेर, जमालपुर और झाझा को छोड़कर शेष सारे स्टेशन ध्वस्त कर दिये गये। टेघड़ा, सिमरियाघाट, बछवाड़ा, रूपनगर आदि पुलिस थाने पूरी तरह जला दिये गये। सूर्यगढ़ा, चौथम और तारापुर में पंचायत गठित कर लोगों ने प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।

इसी प्रकार मुज़फ़्फ़रपुर में कटरा, लालगंज, बेलसंड, मीनापुर आदि पुलिस थानों पर आन्दोलनकारियों ने कब्जा कर लिया। सबसे अधिक क्षति हाजीपुर में हुई। सीतामढ़ी में 17 अगस्त को आन्दोलनकारियों ने वहाँ के एस. डी. ओ. और एक पुलिस पार्टी पर हमला कर उनके हथियार छीन लिए और उन्हें मार डाला। मुज़फ़्फ़रपुर के महनार और सीतामढ़ी सबडिवीजन के पुपरी थाना क्षेत्र में स्थानीय लोगों ने प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। राजनीतिक संगठन की इस शक्ति और सक्रियता से अंग्रेज़ अधिकारी हतप्रभ रह गये।

17 अगस्त '42 को भागलपुर में भी रेलवे स्टेशन, पोस्ट-ऑफिस और थाने आन्दोलनकारियों के कब्जे में आ गये। शुजागंज आदि इलाकों में तो कर्फ्यू की घोषणा करने के लिए किसी डुगडुगी बजाने वाले का निकलना भी कठिन हो गया। सुल्तानपुर में आन्दोलनकारियों ने अपना समानान्तर प्रशासन कायम किया और अपना दारोगा बहाल किया। मधेपुरा और सहरसा में भी प्रशासन पर आन्दोलनकारियों का कब्जा हो गया। हर गाँव में अपनी पंचायत बन गयी और पाँच गाँवों को मिलाकर सर्किल पंचायत क़ायम हुई। पूर्णिया ज़िले में भी आन्दोलन की लहर तेज़ी से फैल गयी। कटिहार में पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें अनेक लोग मारे गये। संतालों की क्रुद्ध भीड़ ने तीर-धनुष के साथ झउआ स्टेशन को जला दिया। रुपौली में एक पुलिस इन्सपेक्टर ने कोई बारह हजार लोगों की भीड़ पर क्वार्टर में छुप कर, खिड़की के रास्ते, गोली चलाई, जिसमें अनेक लोग मारे गये। बाद में आन्दोलनकारियों ने एक सब इन्सपेक्टर और तीन पुलिस जवानों को पकड़ कर ज़िन्दा जला दिया। पूर्णिया से 22 मील दूर धमदाहा में 25 अगस्त को एक भयानक दुर्घटना हुई। आन्दोलनकारियों ने थाने के दारोगा से मालख़ाने की चाभी माँगी। वह उन्हें बात चीत में उलझाये रहा। इस बीच बलूची सेना के सिपाही वहाँ पहुँचे और अंधाधुंध गोली चलाना शुरू किया। स्थानीय लोगों का कहना है कि आन्दोलनकारियों की भीड़ में लोग पक्षियों की तरह घायल होकर और मर-मरकर गिरने लगे।

सारण जिले में भी हज़ारों आन्दोलनकारियों ने प्रदर्शन किया। महाराजगंज में पोस्ट-ऑफ़िस जला दिया गया। एकमा और छपरा कचहरी रेलवे स्टेशनों में आग लगा दी गयी। सीवान में पुलिस को भगा दिया गया और उस स्थान पर आन्दोलनकारियों का कब्जा हो गया। मढ़ौरा में पाँच अंग्रेज़ और एक एंग्लो-इंडियन

सिपाही से उनके हथियार छीन लिये गये और बाद में उन्हें मार दिया गया। इस इलाके में आन्दोलनकारियों के नेता जगलाल चौधरी थे, जो अन्तरिम कांग्रेस सरकार में मंत्री रह चुके थे। बाद में उन्हें दस वर्षों की सजा हुई। जिले के विभिन्न स्थानों, दरौली, रघुनाथपुर, बैकुंठपुर, सिसवन, मांझी, एकमा, दिघवारा, परसा, गढ़खा में अंग्रेज़ी प्रशासन पूरी तरह ठप्प हो गया। इन इलाकों में आन्दोलनकारियों ने स्वयं एक कारगर प्रशासनिक व्यवस्था कायम की, जिसे 'स्वतंत्र मंडल' कहा गया, जो ग्राम पंचायतों के द्वारा काम करता था। संताल परगना में भी आन्दोलन दूर-दूर तक फैल गया था। आन्दोलन की सबसे ज़्यादा तीव्रता देवघर में थी। अनेक पुलिस थाने और पोस्ट-ऑफिस जलाये गये। सड़क मार्ग अवरुद्ध कर दिया गया। जिले के विभिन्न इलाकों में आन्दोलनकारियों की समानान्तर सरकार चलने लगी।

छोटा नागपुर और सिंहभूम क्षेत्र में आन्दोलन की तीव्रता सबसे अधिक राँची और जमशेदपुर में थी। राँची में ताना भगतों का संगठन काफी सक्रिय था। अनेक स्थानों पर तार काटे गये और विष्णुपुर पुलिस थाना जला दिया गया। दूसरी तरफ़ जमशेदपुर में टाटा आयरन ऐंड स्टील कं. के 20 हज़ार कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी और घोषणा की कि जबतक राष्ट्रीय सरकार का गठन नहीं होता, वे काम पर नहीं लौटेंगे। सबसे दिलचस्प बात यह थी कि जमशेदपुर के सिपाहियों ने भी हड़ताल कर दी, जिससे अंग्रेज़ शासकों के कान खड़े हो गये और बाद में वहाँ अंग्रेज़ सिपाही बुलाये गये। यहाँ तक कि वहाँ के मेहतरों ने भी हड़ताल कर दी थी। पलामू में जपला सीमेंट फैक्ट्री के कर्मचारियों ने कई दिनों तक काम बन्द रखा। चम्पारण और शाहाबाद में तो अनेक पुलिस थानों पर आन्दोलनकारियों का कब्जा हो गया। शाहाबाद जिले में डुमराँव के निवासियों ने बहादुरी दिखलाई और थाना पर राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया। इस क्रम में कपिल मुनि नामक एक 12 वर्षीय लड़के को दारोगा ने गोली मार दी। इसके साथ तीन और लोग पुलिस गोली के शिकार हो गये।

अगस्त क्रांति के दौरान पूरे बिहार में सियाराम दल और परशुराम दल नामक दो संगठन काफ़ी सक्रिय थे। लगभग 150 युवकों के साथ सियाराम दल के संस्थापक सियाराम सिंह भागलपुर और आस-पास के इलाकों में गुरिल्ला हमलों के लिये विख्यात थे और अंग्रेज़ी सरकार के काम-काज़ को उन्होंने ठप्प कर दिया था। बीहपुर में इन लोगों ने समानान्तर सरकार का गठन किया था। सोनबरसा थाने के दरोगा पर, जो अपनी नृशंसता के लिये चर्चित था, हमला किया गया, जिसमें संगठन के दो व्यक्ति नित्यानन्द सिंह और अर्जुन सिंह मारे गये। आन्दोलनकारियों की गतिविधियाँ जैसे-जैसे तेज़ होती गयीं, अंग्रेज़ी सरकार की क्रूरता भी बढ़ती गयी। गाँव के गाँव जलाये गये। लाखों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ, हज़ारों लोग गिरफ़्तार किये गये और उन्हें शारीरिक यातना दी गयी। बिहार के प्रायः सभी भागों में अंग्रेज़ों का कठोर

दमन-चक्र चलता रहा। पटना, भागलपुर, मुंगेर, शाहाबाद, गया आदि अनेक ज़िलों में एक प्रकार से सेना का शासन हो गया था। जुब्बा साहनी नामक एक क्रांतिकारी को एक अंग्रेज़ पुलिस इंस्पेक्टर लियोवाकर की हत्या के सिलसिले में, गिरफ़्तार किया गया और भागलपुर जेल में उसे फाँसी दे दी गयी। इस प्रकार की कार्रवाइयों से अंग्रेज़ों ने आन्दोलनकारियों के मन में दहशत पैदा करने का प्रयत्न किया। विभिन्न स्थानों पर सेना ने अपनी क्रूरता का परिचय दिया और निर्दोष लोगों को गोलियों से भून दिया। ब्रिटिश सेना के कैप्टन चैपमैन और लेफ्टिनेन्ट हैज ने स्वयं खगड़िया जाकर हाजत में रखे गये लोगों को बाहर निकाला और उनका सफाया कर दिया। यह घटना कई स्थानों पर दुहरायी गयी। शारीरिक प्रताड़ना की अनेक नृशंस घटनाएँ घटती रहीं। भागलपुर में आन्दोलनकारियों को दबाने के लिए बिलविट और मेजर हॉकिन्स के नेतृत्व में एक सैन्य दल का गठन किया गया। सुल्तानगंज में पुलिस गोली से कोई पैंसठ लोग मारे गये। इसी तरह भागलपुर जेल के कैदियों ने विद्रोह कर दिया था, जिसे दबाने के लिए पुलिस ने गोली चलायी और 29 लोग मारे गये और 27 कैदी घायल हुए। इसी प्रकार शाहाबाद जिला के सरकारी आँकड़ों के अनुसार विभिन्न अवसरों पर पुलिस ने 96 बार गोली चलायी, जिसमें 166 लोग मारे गये और 508 लोग घायल हुए। वस्तुतः बिहार में इस आन्दोलन के दौरान मौत और शारीरिक यातना के अतिरिक्त जो सामूहिक जुर्माना हुआ, उसकी रकम नवम्बर, 1942 तक कोई 20 लाख रुपये थी।

बिहार में 1942 की अगस्त क्रांति की इसी पृष्ठभूमि में जयप्रकाश नारायण, बेनीपुरी-जैसे विश्वस्त साथियों की मदद से जेल से भागकर बाहर आये। 8 अगस्त, '42 के बम्बई अधिवेशन में गाँधीजी के आह्वान से पूर्व 1940 में ही जयप्रकाश नारायण गिरफ़्तार हुए थे और उन्हें हज़ारीबाग जेल में रखा गया था। गाँधीजी के 'करो या मरो' का नारा देने के बाद, जेल में ही, जयप्रकाश जी ने तय कर लिया कि उन्हें बाहर आकर आन्दोलन को तेज़ करना है। राजनैतिक कैदी के रूप में उन्हें जेल में जीवन बिताना स्वीकार नहीं था। हज़ारीबाग जेल में उस समय अनेक समाजवादी नेता और कार्यकर्ता बन्द थे। रामवृक्ष बेनीपुरी भी 1942 के आरम्भिक महीने में ही गिरफ़्तार हुए थे और सीतामढ़ी, मधुबनी तथा दरभंगा जेलों में कुछ समय के लिए रखे गये थे। जब अगस्त का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ तो उन्हें हज़ारीबाग जेल भेज दिया गया। जयप्रकाश नारायण यहाँ पहले से ही मौजूद थे। हज़ारीबाग के जेल-जीवन ने बेनीपुरी को जहाँ सृजन-कर्म के लिए अनुकूल अवसर दिया, वहीं उनमें राजनैतिक इच्छा-शक्ति की दृढ़ता भी आई। हज़ारीबाग जेल की दीवार लाँघकर जयप्रकाश जी को भगाने में बेनीपुरी ने सहायता की थी। वे भागने की योजना बनाने में शामिल थे। उस साहसपूर्ण ऐतिहासिक घटना से आन्दोलनकारियों

का मनोबल ऊँचा हुआ था। जयप्रकाश नारायण के साथ उनके पाँच साथी योगेन्द्र शुक्ल, सूर्य नारायण सिंह, गुलाबचन्द, रामनन्दन मिश्र और शालिग्राम सिंह 9 नवम्बर, 1942 ई. को दिवाली की रात में हज़ारीबाग जेल से भाग निकले थे।

वस्तुतः जयप्रकाश नारायण के हजारीबाग जेल से भागने की घटना बहुत कुछ फिल्मी कहानी की तरह लगती है। महात्मा गाँधी के 'करो या मरो' के आह्वान के बाद जे. पी. ने जेल से बाहर निकलने का मन बना लिया, ताकि बाहर आकर आन्दोलन को तेज़ किया जा सके। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक दर्जन विश्वस्त साथियों के बीच विचार-विमर्श हुआ। इनमें रामवृक्ष बेनीपुरी प्रमुख थे। निश्चय हुआ कि जे. पी. के साथ उनके पाँच विश्वस्त साथी योगेन्द्र शुक्ल, सूरज नारायण सिंह, गुलाब चन्द, रामनन्दन मिश्र और शालिग्राम सिंह जेल से निकलेंगे। ये पाँचों शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट थे और हज़ारीबाग के जंगली रास्तों की इन्हें जानकारी भी थी। दूसरे साथियों को जेल के भीतर रहकर इस योजना को सफल बनाने का दायित्व सौंपा गया।

अब जेल से भागने की तैयारी होने लगी। निश्चय हुआ था कि दशहरे के दिन भागने का रिहर्सल किया जाय और दीपावली के दिन जब जेल के भीतर सारे लोग उत्सव मनाते रहेंगे, भाग निकला जाय। इस गुप्त योजना को कार्यरुप देने की जिम्मेदारी जिन थोड़े लोगों पर थी, उनमें बेनीपुरी प्रमुख थे। वे स्वभाव से ही मस्तमौला, हरदिलअज़ीज़ और उत्सव-प्रेमी थे। दीवाली जैसे-जैसे नजदीक आने लगी, उसे धूमधाम से मनाने की तैयारियों में बेनीपुरी जुट गये। खाने-पीने की चीजों से लेकर दीयों और फुलझड़ियों तक की सूची बनने लगी। दीवाली की रात में मनोरंजन के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम की ज़ोरदार तैयारी शुरू हो गयी।

9 नवम्बर, 1942 : दीवाली की रात। जेल के भीतर दीवाली के दीये जले। फुलझड़ियाँ छूटने लगीं। मिठाइयाँ बँटी। अलग-अलग वार्डों में घूम-घूमकर लोग उत्सव मनाने लगे। गाने-बजाने का कार्यक्रम शुरू हुआ। बेनीपुरी के लतीफ़े और ठहाके गूँजने लगे। वार्डर और जमादार सभी मस्ती में झूम रहे थे। हँसने-हँसाने और गाने-बजाने का ऐसा समाँ बँधा कि एक बजे रात तक सभी उत्सव के नशे में डूबे रहे। उधर जे. पी. अपने पाँच साथियों के साथ पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार जेल की दीवार के पास पहुँच गये। कोई 17 फीट ऊँची दीवार थी। पहरे पर तैनात संतरी हर आठवें मिनट पर राउण्ड लगाता हुआ वहाँ पहुँचता था। अतः आठ मिनट के भीतर ही इस योजना को कार्यरुप देना था। सभी अँधेरे में दीवार के पास सटकर खड़े हो गये। संतरी ज्योंही आगे बढ़ा गुलाब चन्द के कंधे पर योगेन्द्र शुक्ल और उनके कंधे पर सूरज नारायण सिंह चढ़कर धोती की रस्सी के सहारे दीवार से बाहर उतर गये। फिर योगेन्द्र शुक्ल के कंधे पर चढ़कर जयप्रकाश जी उतरे, जिन्हें सूरज

बाबू ने अपने कंधे पर रोक लिया और उन्हें तनिक भी चोट नहीं आई। इसके बाद शालिग्राम सिंह, रामनन्दन मिश्र और गुलाब चन्द भी दीवार पर चढ़कर बाहर आ गये।

जेल के भीतर सभी कैदी और जेल अधिकारी दीवाली का जश्न मनाने में मशगूल थे। सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहा था। जब उत्सव बन्द होने का समय आया, बेनीपुरी ने एक साथी को भेजकर जयप्रकाश जी के कमरे में मच्छरदानी लगवा दी, ताकि देखनेवाले को पता चले कि वे सो रहे हैं। दूसरे भागनेवाले साथियों के कमरों में भी इसी तरह इन्तज़ाम कर दिया गया कि किसी को शक नहीं हो। दो बजे रात में सभी सोने चले गये। दूसरे दिन सबेरे आठ बजे कुछ लोग जे. पी. के कमरे के पास आये। उन दिनों जेल में वे समाजवाद और मार्क्सवाद पर कक्षाएँ लेते थे। कैदी साथियों को यह कहकर लौटा दिया गया कि देर रात तक जगने के कारण जे. पी. की नींद पूरी नहीं हुई है और तबीयत ख़राब हो गयी है। वे अभी सो रहे हैं। किन्तु जेल-अधीक्षक की ओर से दस बजे जे. पी. का बुलावा आया। नये अधीक्षक ने दो दिन पहले कार्यभार ग्रहण किया था। वे जयप्रकाश जी से कुछ विचार-विमर्श करना चाहते थे। जो आदमी बुलाने गया था, उससे कह दिया गया कि अभी वे दूसरे वार्ड में गये हैं। उन्हें ढूँढने में कुछ और समय व्यतीत हुआ। यह ख़बर फैलने लगी कि जे. पी. नहीं मिल रहे हैं। एक जमादार ने आकर कहा कि योगेन्द्र शुक्ल नहीं मिल रहे हैं। सूरज नारायण सिंह के वार्ड के संतरी ने भी कहा कि सूरज बाबू वहाँ नहीं हैं। जेल की पगली घंटी बजी और सबकी खोज शुरू हुई। जेल का कोना-कोना छान डाला गया। शौचालयों और स्नानघरों में देखा गया, किंतु कहीं कुछ पता नहीं चला। सरकार की तरफ़ से इन छह लोगों के भाग जाने की आधिकारिक घोषणा हो गयी। साथ ही यह भी घोषित हुआ कि जयप्रकाश नारायण, योगेन्द्र शुक्ल और रामनन्दन मिश्र को पकड़वाने वाले को पाँच-पाँच हजार रुपये तथा अन्य तीन लोगों के लिए दो-दो हज़ार रुपये इनाम दिये जायेंगे।

हज़ारीबाग जेल में कोई एक सौ आन्दोलनकारी बन्दी थे। किन्तु इनमें केवल बारह लोगों को ही पलायन की योजना का पता था। छह तो भागने वाले थे और छह उनको भगाने वाले। जेल के भीतर के इन छह लोगों ने ही दीवाली की रात का पूरा नाटक रचा था और इनमें मुख्य भूमिका बेनीपुरी की थी।

3
बेनीपुरी का साहित्य

रामवृक्ष बेनीपुरी ने गद्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है और महत्त्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया है। नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, संस्मरण, निबंध, यात्रा-वृत्तांत, शब्द-चित्र आदि गद्य की प्रायः सभी विधाओं में उन्होंने लगभग सत्तर पुस्तकें लिखी हैं। इनमें गम्भीर साहित्यिक कृतियों से लेकर राजनीतिक विश्लेषण तथा बच्चों के लिए मनोरंजन-प्रधान छोटी पुस्तिकाएँ भी शामिल हैं। इस दृष्टि से बेनीपुरी का रचना-संसार व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। हिन्दी में वे अपनी विशिष्ट भाषा-शैली के लिए याद किये जाते हैं।

वस्तुतः बेनीपुरी का साहित्य उनके समाजवादी आदर्शों का रचनात्मक रूप है। समाज, संस्कृति और इतिहास की चिन्ता-धाराओं से उनके साहित्यिक मानस का निर्माण हुआ है। इसलिए उनका लेखन गहरे स्तर पर सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ है, बल्कि कहा जाय कि बेनीपुरी का जीवन-संघर्ष और रचना-कर्म दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। उनका साहित्य शांति के क्षणों का बुद्धि-विलास नहीं है, वह संघर्ष और यातना के दौर से गुज़रते हुए आदमी का अनुभव-विस्तार है। एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप में स्वतंत्रता-आन्दोलन में भागीदारी और एक सर्जक साहित्यकार के रूप में जीवन के उन तमाम अनुभवों की अभिव्यक्ति बेनीपुरी के साहित्य की मुख्य रचना-भूमि है।

विधा की दृष्टि से बेनीपुरी की प्रमुख रचनाओं का परिचय इस प्रकार है :

शब्द-चित्र

हिन्दी में रिपोर्ताज शैली की तरह ही शब्द-चित्र की विधा विकसित करने का श्रेय बेनीपुरी को है। पात्रों, स्थानों, स्थितियों आदि को लेकर बेनीपुरी ने अपने मनोभावों की प्रवाहमय और कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति की है। शब्द-संयोजन और वाक्य-संरचना में एक अलग अंदाज़ दिखाई पड़ता है। वर्णन सटीक और व्यंजनापूर्ण है। गागर में सागर भरने का प्रयास वे शब्द-चित्रों के द्वारा करते हैं। इस रूप में बेनीपुरी ने एक नयी गद्य-शैली विकसित की है। इस शैली में लिखित उनके कुछ प्रमुख संग्रह हैं 'लाल तारा', 'माटी की मूरतें' तथा 'गेहूँ और गुलाब'।

लाल तारा

'लाल तारा' बेनीपुरी के शब्द-चित्रों का पहला संग्रह है। उन्होंने स्वीकार किया है कि इसका पहला रूप उस ज़माने में निकला था, जब वे सिर से पैर तक लाल थे। दूसरे संस्करण में इसका कुछ रूप बदला और तीसरे संस्करण (1953) में यह बिल्कुल नये रूप में पाठकों के सामने आया। अतः इस 'नये रूप' से ही हिन्दी जगत् परिचित है। बेनीपुरी के ही शब्दों में 'लाल तारा' एक नये प्रभात का प्रतीक था। वह प्रभात अब अधिक सन्निकट है। शायद इसलिए अंधकार भी अधिक सघन हो चला है। यह अंधकार छँटे, नये प्रभात का स्वर्णोदय हो – यही लेखक की कामना है। यह पुस्तक शहीद बैकुंठ शुक्ल को समर्पित है, जो '42 आन्दोलन के अग्रणी क्रांतिकारी थे और हज़ारीबाग जेल में जयप्रकाश नारायण के साथी थे।

'लाल तारा' में बेनीपुरी के 16 शब्द-चित्र 'लाल तारा', 'हलवाहा', 'यह और वह', 'कुदाल', 'डुगडुगी', 'शहीदों की चिताओं पर', 'आँधी में चलो', 'कस्मै देवाय हविषा विधेम', 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'हँसिया हथौड़ा', 'नयी संस्कृति की ओर', 'कुछ क्रांतिकारी विचार', 'रेलगाड़ी', 'जवानी', 'कलाकार' और 'दीप-दान' हैं। 'लाल तारा' शीर्षक शब्द-चित्र में लेखक ने पूस के जाड़े के बीच गरभू नामक किसान का जीवन-चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति की पृष्ठभूमि में मानव जीवन का चित्रण करना बेनीपुरी के शब्द चित्रों की विशेषता रही है। वे लिखते हैं "निविड़ अंधकार और घने कुहासे के पर्दे फाड़कर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था। गरभू उठा। पूस का जाड़ा, पुआल की तहों को छेद इस आख़िरी रात को गरभू के कलेजे तक पहुँच चुका था। पहले दमा उठा, फिर गरभू। गरभू उठा, झोंपड़ी के बाहर आया। एक बार काँपते-काँपते उसने खलिहान को चारों ओर नजर दौड़ाकर देखने की चेष्टा की।" इस तरह प्रकृति और जीवन का समानान्तर विकास 'लाल तारा' के शब्द-चित्रों में है। यह लाल तारा एक नये प्रभात का, नयी उमंगों और आकाक्षांओं का प्रतीक है, जिसके सहारे ज़िन्दगी आगे बढ़ती है। इसी तरह 'हलवाहा' का चित्रण करते हुए बेनीपुरी ग्राम-प्रकृति का सजीव वर्णन प्रस्तुत करते हैं। कृषक जीवन की विसंगतियों पर व्यंग्य करते हुए बेनीपुरी प्रश्न उठाते हैं कि जो पैदा करता है, वह भूखा रहता है और जो बैठा रहता है, काम नहीं करता, वही मौज करता है। वह कहते हैं – "यह पृथ्वी रहकर क्या होगी, जहाँ मनुष्य बैल बन जाता है? जहाँ उस बैल को दिन-रात खटाया जाता है, किन्तु चारा भी नहीं दिया जाता है। जहाँ वह भूखों मरता है जो पैदा करता है। जहाँ वह मौज उड़ाता है, जो अजगर-सा बैठा रहता है।" (लाल तारा, पृष्ठ 10, बेनीपुरी ग्रंथावली, पहला खंड)

'हँसिया और हथौड़ा' शीर्षक शब्द-चित्र में लेखक ने किसानों और मज़दूरों के परस्पर सम्बन्ध और इनकी सामाजिक भूमिका को रेखांकित किया है। साम्यवादी और समाजवादी शब्दकोष में इन शब्दों का विशेष अर्थ है। बेनीपुरी ने उस अर्थ-छवि को उद्घाटित करते हुए अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया है। वे लिखते हैं – "हँसिया-हथौड़ा, शक्ति और कर्तृत्व के ये दो प्रतीक हैं। कृषि और उद्योग के, प्रकृति और पुरुष के, संसार-रथ इन्हीं दो पहियों पर बढ़ा जा रहा है। हाँ दोनों पहियों पर – एक पहिया भी गिर जाय, तो यह रथ एक पग बढ़ने का नहीं। हँसिया-हथौड़ा संसार-रथ के ये दो पहिये हैं।" (लाल तारा, पृष्ठ-18)

इस संग्रह के अन्तर्गत 'डुगडुगी' नामक एकांकी नाटक भी है। यह एकांकी शब्द-चित्र की अवधारणा का अतिक्रमण करता है। रूप और शैली की दृष्टि से यह अन्य शब्द-चित्रों से भिन्न है। फिर भी बेनीपुरी ने इसे शब्द-चित्र के अन्तर्गत ही परिगणित किया है। काल-क्रम की दृष्टि से 'लाल तारा' के लेख ज़्यादातर स्वतंत्रता से पहले के हैं, और कुछ बाद के भी। 'नयी संस्कृति की ओर' में आज़ादी के बाद समाज-निर्माण की समस्या पर विचार किया गया है। बेनीपुरी का यह विचार कितना प्रासंगिक है – "नये समाज की अर्थनीति या राजनीति आदि पर ही हमें ध्यान देना नहीं है, बल्कि उसकी संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान देना है, क्योंकि मूल और तने की सार्थकता तो उसके फूल में ही है। फिर इन तीनों का सम्बन्ध इतना गहरा है कि आप उन्हें अलग-अलग कर भी नहीं सकते। नयी अर्थनीति और राजनीति के साथ एक नयी संस्कृति का विकास हमारी आँखों के सामने हो रहा है – भले ही हम उसे देख न पायें या उसकी ओर से अपनी आँखें मूँद लें।" (लाल तारा, पृष्ठ 52)

बेनीपुरी की दृष्टि से नये समाज के लिए संस्कृति पर सबसे ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। क्योंकि कोई भी सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़कर ही स्थायित्व ग्रहण करता है, इसलिए अपनी सांस्कृतिक जड़ों की तलाश ज़रूरी है।

इसके साथ ही एक सच्चे समाजवादी के नाते बेनीपुरी सामाजिक विषमता के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। 'रेलगाड़ी' शीर्षक शब्द-चित्र में विभिन्न श्रेणियों में सफ़र करने वालों की मनोदशा का अत्यंत स्वाभाविक वर्णन किया गया है। यह श्रेणी विभाजन हमारे समाज की आर्थिक और सामाजिक विषमता को उजागर करता है। लेखक ने यात्रियों की मनोदशाओं, उनकी कठिनाइयों आदि का सहज-स्वाभाविक वर्णन किया है। वस्तुतः 'लाल तारा' बेनीपुरी के क्रांतिकारी विचारों और सामाजिक यथार्थ के प्रति उनके आग्रहों का शिलालेख है।

94857

माटी की मूरतें

'माटी की मूरतें' बेनीपुरी के शब्द-चित्रों का दूसरा संग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन 1946 ई. में हुआ। इसमें ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित बारह व्यक्तियों की चरित्र-कथाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। ये बारह व्यक्ति हैं – 'रजिया', 'बलदेव सिंह', 'सरजू भैया', 'मँगर', 'रूपा की आजी', 'देव', 'बालगोबिन भगत', 'भौजी', 'परमेसर', 'बैजू मामा', 'सुभान खाँ' और 'बुधिया'। इन चरित्र-कथाओं की रचना की कल्पना हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में बेनीपुरी ने की थी। संग्रह की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि "हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के एकान्त जीवन में अचानक मेरे गाँव और मेरे ननिहाल के कुछ ऐसे लोगों की सूरतें मेरी आँखों के सामने आकर नाचने और मेरी कलम से चित्रण की याचना करने लगीं। उनकी इस याचना में कुछ ऐसा ज़ोर था कि अन्ततः यह 'माटी की मूरतें' तैयार होकर रहीं।

इन चरित्र-कथाओं को लेखक ने 'कहानी' नहीं, 'जीवनी' कहा है, किंतु जीवनी के लिए किसी चरित्र के सम्पूर्ण जीवन प्रसंगों का जो क्रम बद्ध विवरण होना चाहिए, वह इनमें नहीं है। लिहाजा इन्हें चरित्र-कथा या स्वयं बेनीपुरी के शब्दों में "चलते-फिरते आदमियों के शब्द-चित्र" कहा जा सकता है। गाँव के जीवन से लेखक बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है। लेखक का कहना है – "जब कभी आप गाँव की ओर निकले होंगे, आपने देखा होगा, किसी बड़ या पीपल के पेड़ के नीचे चबूतरे पर, कुछ मूरतें रखी हैं, माटी की मूरतें। ये मूरतें, न इनमें कोई खूबसूरती है, न रंगीनी। किन्तु इन कुरूप, बदशकल मूरतों में भी एक चीज़ है – शायद उस ओर हमारा ध्यान नहीं गया। वह है ज़िन्दगी। ये माटी की बनी हैं, माटी की धरी हैं, इसलिए ज़िन्दगी के नजदीक हैं, ज़िन्दगी से सराबोर हैं। ये देखती हैं, सुनती हैं, खुश होती हैं, नाराज होती हैं, शाप देती हैं, आशीर्वाद देती हैं। ये मूरतें न तो किसी आसमानी देवता की होती हैं, न अवतारी देवता की। गाँव के ही किसी साधारण व्यक्ति मिट्टी के पुतले ने किसी असाधारण अलौकिक कर्म के कारण एक दिन देवत्व प्राप्त कर लिया, देवता में गिना जाने लगा और गाँव के व्यक्ति-व्यक्ति के सुख-दुख का द्रष्टा-स्रष्टा बन गया।"

वस्तुतः गाँव के इन्हीं मिट्टी के पुतलों का चरित्रांकन बेनीपुरी ने 'माटी की मूरतें' में किया है। संग्रह की पहली चरित्र-कथा है– रजिया। गाँव की चुड़िहारिन रजिया को लेखक बचपन से जानता है। उसके ग्रामीण सौंदर्य, भोलापन और अल्हड़पन से लेकर उसके जीवन-संघर्ष तक का मार्मिक शब्द-चित्र वह प्रस्तुत करता है और उसकी बीमारी का अत्यन्त कारूणिक एवं अवसादपूर्ण वातावरण हमारे सामने रख देता है। सुन्दरता और करुणा की मार्मिक तस्वीर रजिया के रूप में लेखक अंकित करता है। शहर से गाँव जाने पर वह रजिया के यहाँ मिलने जाता है। बीमार रजिया मिलने आती है -- "उसकी दोनों पतोहुएँ उसे सहारा देकर आँगन में ले आयीं।

रजिया – हाँ मेरे सामने रजिया खड़ी थी – दुबली पतली, रूखी-सूखी। किन्तु जब नजदीक आकर उसने 'मालिक, सलाम' कहा, उसके चेहरे से एक क्षण के लिए झुर्रियाँ कहाँ चली गई, जिन्होंने उसके चेहरे को मकड़जाला बना रखा था। मैंने देखा, उसका चेहरा अचानक बिजली के बल्ब की तरह चमक उठा और चमक उठीं वे नीली आँखें जो कटोरी में घुँस गयी थीं। और अरे चमक उठी हैं आज फिर से चाँदी की बालियाँ और देखो, अपने को पवित्र कर लो, उसके चेहरे पर फिर अचानक लटक कर चमक रही हैं वे लटें, जिन्हें समय ने धो-पोंछ कर शुभ्र-श्वेत बना दिया है।" (माटी की मूरतें, बेनीपुरी ग्रंथावली, पहला खंड, बेनीपुरी प्रकाशन, पटना-6 प्रथम संस्करण, दिसम्बर 1953 ई. पृष्ठ - 9-10)।

बेनीपुरी की इन चरित्र-कथाओं में ग्रामीण जीवन की सादगी, निश्छलता, आपसदारी और साम्प्रदायिक एकता के चित्र भरे पड़े हैं। रजिया इसकी एक मिसाल है। इसी तरह 'बलदेव सिंह' की कथा में एक वर्णन है – "उन दिनों हिन्दू-मुसलमानों की तनातनी नहीं थी। दोनों दूध-चीनी की तरह घुले-मिले थे। हिन्दू की होली में मुसलमानों की दाढ़ी रँगी होती, मुसलमानों के ताजिए में हिन्दू के कंधे लगे होते। ताजिए के दिन थे। मेरे गाँव में भी ताजिया बना था, यद्यपि एक भी मुसलमान वहाँ नहीं। एक बूढ़े मौलवी साहब बुलाये गये थे, जो उसके धार्मिक कृत्य कर लेते। हमें सरोकार था सिर्फ ताजिए के निकट हो-हल्ला मचाने से। शाम हुई, जल्द-जल्द खा-पीकर सबलोग एकत्र हुए। ताशे बज रहे, लकड़ी खेली जा रही, गदके भांजे जा रहे, पट्टेबाजी हो रही। लाठियों के खेल। तरह-तरह के शारीरिक करतब। औरतें और बच्चे मर्सिया के नाम पर शोर मचा रहे। खेलकूद में आधी-आधी रात बीत जाती।"

(माटी की मूरतें, बेनीपुरी ग्रंथावली, पहला खंड, प्रथम संस्करण 1953 पृष्ठ 13-14)

साम्प्रदायिक सद्भाव और एकता पर आधारित बेनीपुरी की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण चरित्र-कथा है – सुभान खाँ। वर्तमान माहौल में सुभान खाँ का चरित्र हिन्दू-मुसलमान एकता और भाईचारे की प्रेरणा देता है। लेखक के शब्दों में – "उनका घर क्या था – बच्चों का अखाड़ा बना हुआ था। पोते-पोतियों, नाती-नतिनों की भरमार थी उनके घर में। मेरी ही उम्र के बहुत बच्चे। रंगीन कपड़ों से सजे-धजे – सब मानों मेरे ही इंतज़ार में। जब पहुँचा, सुभान दादा की बूढ़ी बीबी ने मेरे गले में एक बद्दी डाल दी, कमर में घंटी बाँध दी, हाथ में दो लाल छड़ियाँ दे दी और उन बच्चों के साथ मुझे लिये-दिये करबला की ओर चलीं। दिन भर उछला, कूदा, तमाशे देखे, मिठाइयाँ उड़ाई और शाम को फिर सुभान दादा के कंधे पर घर पहुँच गया। ईद-बकरीद को न सुभान दादा हमें भूल सकते थे, न होली दिवाली

को हम उन्हें। होली के दिन नानी अपने हाथों से पुए, खीर और गोश्त परोस कर सुभान दादा को खिलातीं। और तब मैं ही अपने हाथों से अबीर लेकर उनकी दाढ़ी में मलता।" (माटी की मूरतें, बेनीपुरी ग्रंथावली, पहला खंड, प्रथम संस्करण 1953, पृष्ठ-97)

बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' भारतीय ग्रामीण समाज में पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की संवेदनशील अभिव्यक्ति है। लेखक इन रिश्तों की तह में जाकर इनकी पवित्र गुदगुदी और गरमाहट की चर्चा करता है, जिससे संघर्षमय जीवन में भी आनन्द और सुख का रस संचार होता है। 'भौजी' शीर्षक चरित्र-कथा की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :–

"भारतीय परिवार में भौजी का वही स्थान है, जो मरुभूमि में 'ओयसिस' का। धधकती हुई बालू की लू-लपट में दिन-दिन, रात-रात चलते-चलते जब मुसाफिर दूर से खजूरों की हरी-भरी फुनगी देखता है, उसकी आँखें ही नहीं तृप्त हो जातीं, उसके शरीर का रोम-रोम पुलकित और उसकी शिराओं का एक-एक रक्त-बिन्दु नृत्यशील हो उठता है। कुछ क्षणों के लिए उसका सारा जीवन हरीतिमामय हो जाता है, खजूरों की उस झुरमुट में वह मीठे फल और मीठा पानी पीता है। एकाध दिन वहीं रहकर वह आनन्द मनाता है, रक्त संचय करता है, फिर ताजगी और नयी उमंग लेकर आगे बढ़ता है, आगे जहाँ, फिर वही अनन्त बालुका-राशि है।" (माटी की मूरतें, बेनीपुरी ग्रंथावली, पहला भाग, प्रथम संस्करण 1953, पृष्ठ 65)

ग्रामीण जीवन-यात्रा में परिवार की स्थिति और शुष्कता एवं संघर्षशीलता में देवर-भाभी के रिश्तों की मिठास एक नयी जीवन-शक्ति पैदा कर देती है। बेनीपुरी की लेखनी ने गाँव के अनगढ़ जीवन में सौंदर्य और कोमलता का चित्र भी प्रस्तुत किया है।

बेनीपुरी की इन चरित्र-कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता है, ग्रामीण चरित्रों के जीवन की सहजता, सादगी, शांति-प्रियता और सामाजिक-साम्प्रदायिक सद्भावना एवं एकता। अपनी समाजवादी आस्था के अनुरूप बेनीपुरी ने इन चरित्रों का सृजन किया है, जो वर्तमान समाज के लिए प्रेरणादायक हो सकते हैं। माटी की इन मूरतों का स्वागत भी हिन्दी जगत में भरपूर हुआ। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है – "डरता था, सोने-चाँदी के इस युग में मेरी ये 'माटी की मूरतें' कैसी पूजा पाती हैं? किन्तु इधर इनमें से कुछ ही प्रकाश में आयीं। हिन्दी संसार ने उन्हें सर-आँखों पर लिया। वह मेरी कलम या कला की करामात नहीं, मानवता के मन में मिट्टी के प्रति जो स्वाभाविक स्नेह है, उसका परिणाम है।" ("माटी की मूरतें" की भूमिका)

'माटी की मूरतें' के प्रथम संस्करण में कुल ग्यारह चरित्र-कथाओं का ही समावेश था। नवीन संस्करण (1953) में बेनीपुरी के शब्दों में "एक मूरत और जोड़ दी

गयी – रजिया। क्रम में भी कुछ परिवर्तन किया गया है और पाठ में भी।" इस तरह इसमें बारह चरित्र-कथाओं को सम्मिलित किया गया है, जिन्हें लेखक ने 'शब्द-चित्र' की संज्ञा दी है। इसमें दो राय नहीं कि इसे साहित्य में एक अलग गद्य-विधा के रूप में स्वीकृति दिलाने में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का विशेष योगदान है।

सन् 1954 ई. में, साहित्य अकादेमी की स्थापना के बाद, हिन्दी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए पुस्तकों का चयन करना था। प्रथम परामर्शदातृ समिति ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' के साथ बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' का चयन किया, जिसका अनुवाद दस भाषाओं में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक से बेनीपुरी को अपार ख्याति तो मिली ही, उन्हें पर्याप्त अर्थ-लाभ भी हुआ। इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा गया है – "1942 के बाद जब बेनीपुरी जी जेल से लौटे तो उन्होंने पैसे भी खूब कमाये। उनकी एक ही पुस्तक (माटी की मूरतें) ने उन्हें लगभग एक लाख रुपया दिया। वे कहते भी थे "ये माटी की मूरतें सोना उगलती हैं।" (वीरेन्द्र नारायण, नयी धारा, बेनीपुरी-स्मृति-अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त 1969 ई.)। वस्तुतः यह पुस्तक ग्रामीण-जीवन और कृषि संस्कृति के प्रति बेनीपुरी की अटूट आस्था की पुष्टि करती है।

गेहूँ और गुलाब

बेनीपुरी के शब्द-चित्रों का तीसरा संग्रह 'गेहूँ और गुलाब' सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह का भी हिन्दी-जगत में ज़ोरदार स्वागत हुआ और बेनीपुरी को काफी यश मिला। इस पुस्तक को उन्होंने पुस्तक के साथ-साथ एक आन्दोलन भी कहा है। भूमिका में उन्होंने लिखा है – "यह पुस्तक है और आन्दोलन भी। पुस्तक, जिसमें मेरी कुछ नयी कृतियाँ संग्रहीत हैं। मुख्यतः शब्द चित्र : जिनके लिए मुझे अनायास प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी। . . . यह हुई पुस्तक। और आन्दोलन – जो हमें भौतिकता की अंधगुफा से उठाकर सांस्कृतिक धरातल की ओर ले जाय। जो संघर्ष के बीच भी हमें सौंदर्य देखने की दृष्टि दे। पैर कीचड़ को ठेलते बढ़ रहे हों, किन्तु आँखें इन्द्रधनुष पर जमी हों।" (भूमिका : गेहूँ और गुलाब)

वस्तुतः दुनिया में वस्तुओं के मूल्यांकन की दो दृष्टियाँ प्रचलित हैं – उपयोगितावादी और सौंदर्यवादी। बेनीपुरी मानते हैं कि जीवन में दोनों का समान महत्त्व है। किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी मान्यता का प्रतिपादन वे 'गेहूँ और गुलाब' के द्वारा करते हैं। उनका कहना है – "गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूँघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से हमारा मानस तृप्त होता है।" बेनीपुरी का मानना है कि "जब तक मानव के जीवन में गेहूँ और गुलाब का संतुलन रहा, वह सुखी रहा, सानन्द रहा। वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था। उसके श्रम के साथ संगीत गुँथा हुआ था और संगीत के साथ श्रम। उसका

साँवला दिन में गायें चराता था, रात में रास रचाता था। पृथ्वी पर चलता हुआ वह आकाश को नहीं भूलता था और जब आकाश पर उसकी नज़रें गड़ी थीं, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर हैं।"

किन्तु समस्या तब पैदा हुई, जब यह संतुलन बिगड़ गया। प्रतिबद्ध वैचारिक आग्रहों के कारण दृष्टि एकांगी हो गयी। उपयोगितावाद जीवन पर हावी हो गया और सुन्दरता विलासिता का पर्याय मान ली गयी। बेनीपुरी जीवन की इस विडम्बना का चित्रण करते हुए कहते हैं – "अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोड़ने वाले, थकाने वाले, उबाने वाले, नारकीय यंत्रणाएँ देने वाले श्रम का – उस श्रम का, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शांत न कर सके। और, गुलाब बन गया प्रतीक – विलासिता का, भ्रष्टाचार का, गन्दगी और गलीज का। वह विलासिता – जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी। "दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के कारण जीवन असंतुलित हो गया है। बेनीपुरी मानते हैं कि जीवन में यथार्थ और आदर्श, उपयोगिता और सौंदर्य दोनों का सम्यक् मेल होना चाहिए। 'गेहूँ और गुलाब' की यही मूल स्थापना है।

इस संग्रह के दूसरे शब्द-चित्र हैं – 'जहाज जा रहा है', 'चरवाहा', 'फुलसुँघनी', 'तितलियाँ', 'नथुनियाँ', 'नींव की ईंट', 'गेंदा', 'हरसिंगार', 'गुलाब', 'पुरुष और परमेश्वर', 'ये मनोरम दृश्य', 'मीरा नाची रे', 'डोमखाना', 'कंजड़ों की दुनिया', 'चक्के पर गोशाला', 'रोपनी', 'घासवाली', 'पनिहारिन', 'बचपन', 'किसको लिख रहे हैं', 'छब्बीस साल बाद', 'पहली वर्षा', और 'लागल करेजवा में चोट'। विषय की दृष्टि से इन शब्द-चित्रों में काफी विविधता है। मानव-प्रकृति और मानवेतर प्रकृति का अत्यंत सजीव चित्रण बेनीपुरी के इन ललित-लेखों की विशेषता है।

नाटक

यों तो बेनीपुरी ने साहित्य की अनेक विधाओं में रचनाएँ की हैं, लेकिन उन्हें सर्वाधिक सफलता नाटक के क्षेत्र में मिली है। अपनी पहली नाट्य रचना 'अम्बपाली' से ही वे हिन्दी पाठकों के बीच लोकप्रिय हो गये। नाटक की ओर अपने रुझान की चर्चा करते हुए 'अम्बपाली' की भूमिका में बेनीपुरी ने लिखा है कि "बचपन में ही मेरा झुकाव नाटक-रचना की ओर हुआ था। हाई स्कूल के चौथे या तीसरे वर्ग में ही मैंने एक नाटक लिखा था, लँगोटिया यारों को सुनाया था, उन्हें पसन्द आया, उसे खेलने का आयोजन भी हुआ और एक मारवाड़ी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपये का चंदा भी उगाहा था। लेकिन बाद में कवि बन गया, तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बन कर रह गया। किन्तु हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के निश्चिंत एकांत में जब एक दिन बादल घिर आये कि अचानक मेरा नाटककार जाग उठा।" इस प्रकार 'अम्बपाली' की रचना की प्रेरणा बेनीपुरी को हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में मिली,

जब वे एक राजनीतिक क़ैदी का जीवन बिता रहे थे। अगस्त 1942 से जुलाई, 1945 तक बेनीपुरी हज़ारीबाग जेल में नज़रबन्द थे। स्वतंत्रता-आन्दोलन के दौरान गिरफ़्तार होकर वे हज़ारीबाग जेल गये थे। प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण भी हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में ही बन्दी थे। और भी अनेक आन्दोलनकारी नेता उस जेल में थे।

बेनीपुरी ने अम्बपाली की रचना हज़ारीबाग जेल में ही की। उस पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि "अब भी वे दिन भूले नहीं हैं, जब हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के वार्ड नं. एक के सामने, सघन पत्तियों वाली एक आम्र विटपी के तने से उठँगकर, मैं अपनी अम्बपाली की रचना किया करता था – सामने फूलों से लदे मोतिए और गुलाब के झाड़ थे, ऊपर आसमान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी और भीतर मेरी लेखनी काग़ज़ पर घुड़दौड़ करती थी। दिन भर में जो कुछ रचता, शाम को मित्रों को सोल्लास सुनाता। उस पाषाणपुरी में मेरी इस कुसुम-तनया की अलौकिक चरितावली उनके शुष्क हृदयों को हरा-भरा और रंगीन बना देती और वे मुझ पर और मेरी इस कृति पर प्रसन्नता की पुष्पवृष्टि करने लगते। बेचारे विधाता को ऐतिहासिक अम्बपाली की सृष्टि करने में ऐसा सुन्दर वातावरण और निराला प्रोत्साहन कहाँ प्राप्त हुआ होगा? इस तरह अपनी ऐतिहासिक नाट्य कृति अम्बपाली की रचना बेनीपुरी ने हज़ारीबाग जेल में की। एक प्रकार से उनके गम्भीर साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ राजनीतिक संघर्ष की इसी पृष्ठभूमि में हुआ। पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने से पूर्व इस नाटक की अनेक मंच-प्रस्तुतियाँ हुई और बिहार के कोने-कोने में नाटककार के रूप में बेनीपुरी की धूम मच गई। वैशाली की राज्य नर्तकी अम्बपाली के जीवन प्रसंगों की सुन्दर सटीक अभिव्यक्ति के कारण यह नाटक अत्यंत लोकप्रिय हुआ। नाटक के अन्तर्गत वैशाली में भगवान बुद्ध और अम्बपाली का प्रसंग भी अत्यन्त सजीव रूप में वर्णित है। अम्बपाली का बौद्ध धर्म में दीक्षित होना, भोग पर त्याग की विजय का प्रतीक है। बेनीपुरी ने अपने संघर्षमय राजनीतिक जीवन में प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति अम्बपाली की कथा लिखकर जैसे संघर्ष की शुष्कता को रस-प्लावित कर दिया है।

'अम्बपाली' प्रेम, सौन्दर्य, पराक्रम और साधना की गाथा है। ग्रामीण परिवेश में अम्बपाली और अरुणध्वज के जिस सहज प्रेम का उदय होता है, वह अम्बपाली के राजनर्तकी बनने के बाद अवरुद्ध हो जाता है। राजधानी के ऐश्वर्य-सुख में रहकर भी अम्बपाली का मन अरुणध्वज और गाँव के आम्रकुंज में उलझा हुआ है। किंतु राजकीय व्यस्तता और विवशता के कारण वह गाँव लौट नहीं पाती। वह गाँव उस समय जाती है, जब घायल अरुणध्वज जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा है। जिस दिन वैशाली में मगध सेना घुसी थी, उसी दिन अरुणध्वज घायल हुआ था। दरअसल

अम्बपाली की ओर जाते हुए तीर को उसने अपने ऊपर ले लिया था। जख़्म बढ़ता ही गया और आज अम्बपाली की उपस्थिति में उसने दम तोड़ दिया। इस दुर्घटना का ज़बरदस्त प्रभाव अम्बपाली पर पड़ता है। सारी स्थितियों के लिए वह स्वयं को ज़िम्मेदार मानती है। वह चयनिका से कहती है – "जो ज़बान पर आये वह भी प्रेम है ? हमारे ऋषियों ने कहा है सुकर्म को जिह्वा पर मत लाओ, जिह्वा पर अग्निदेव हैं, वह उसे जला देंगे, भस्म कर देंगे। बहुत ही सही चयनिके! कोई भी पावन चीज़ जिह्वा पर नहीं लानी चाहिए। फिर प्रेम। जिह्वा अग्नि है तो प्रेम बर्फ। वह तो उसकी आँच से ही गल जाती है। राधा किसी से अपनी प्रेम-व्यथा कहने गयी – हाँ, उनका मूक प्रेम कितने कवियों की वाणी का शृंगार बन गया और अनन्त काल तक बनता रहेगा। यही प्रेम की महत्ता है। इसी वैशाली में रहकर अरुण क्या अम्बपाली से अपना प्रेम कहने आया और हमेशा उसके साथ छाया-सी घूमती हुई भी मधूलिका ने अरुण से अपना प्रेम कहा?" (अम्बपाली, बेनीपुरी ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृष्ठ 103-104)

अम्बपाली के इस कथन में उसकी सारी पीड़ा और व्यथा अभिव्यक्त हुई है। वह जीवन से बिल्कुल थकी-हारी महसूस करने लगी है। कभी मगध सम्राट अजातशत्रु को उसने पूरे स्वाभिमान और आत्म-विश्वास के साथ उत्तर दिया था – "अम्बपाली प्रशंसा की भूखी नहीं है, मगधपति! और वह प्रशंसा भी वैशाली विजेता के मुँह से। ऐसी प्रशंसा को वह लानत समझती है। घोंसले को उजाड़ने वाले बहेलिये से चिड़िया चुमकार सुनना पसंद नहीं करती।" किंतु बाद की परिस्थितियों ने उसे इस तरह तोड़ दिया है कि वह ज़िन्दा लाश की तरह महसूस करती है। वह चयनिका से कहती है – "चयनिके, अम्बपाली के सोने के दिन चले गये। अब तो उसके कंधों पर एक थाती दे दी गयी है। उफ री निठुर थाती। (फिर छत की ओर देखती) मधु-मधु, तू यह क्या कर गयी रे, मुझसे यह नहीं ढोयी जाती है, मधु, जो ज़िन्दगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है। काश तू जान पाती, मैंने ज़िन्दगी भी लाश ही की तरह ढोयी है।"

वस्तुतः यौवन की मादकता और सुन्दरता से अलग राजनर्तकी अम्बपाली का यह आत्म-विश्लेषण उसे बौद्ध धर्म की ओर प्रेरित करता है। वह भगवान बुद्ध को आमंत्रित करती है, और, जब उनके समक्ष उपस्थित होती है तो उसके वस्त्र बिलकुल सादे हैं। बुद्ध को स्वयं आश्चर्य होता है :

भगवान बुद्ध – आपका यह वेश?

अम्बपाली – मैं देख चुकी भगवान, आदमी दो में एक का ही शृंगार कर सकता है – तन का या मन का।

भगवान बुद्ध – सबसे बड़ा सत्य वही है, भद्रे, जिसपर आदमी खुद अपने अनुभवों से पहुँचे।

अम्बपाली – लेकिन मेरे ऐसे अनुभवों से पार होने का दुर्भाग्य किसी को भी प्राप्त न हो भगवान !

भगवान बुद्ध – (मुस्कुराते हुए) वैशाली की राजनर्तकी और दुर्भाग्य !

अम्बपाली – (खिन्न स्वर में) भगवान, मुर्दे को काँटों में मत घसीटिए ! जो ज़िन्दगी भर दीप शिखा-सी खुद जलती और दूसरों को जलाती रही, अगर उसकी भी ज़िन्दगी सौभाग्य ही हो, तो फिर दुर्भाग्य कहेंगे किसे भगवान?

भगवान बुद्ध – जब वासनाओं से विरक्ति आ जाय, तब समझना चाहिए, अन्तर का देवता जग उठा !

अम्बपाली – अन्तर का देवता क्या है, मैं नहीं जानती, भगवन,! हाँ मेरे अन्तर में आग लगी है, जो मुझे जला रही है, झुलसा रही है, यह अनुभव करती हूँ। हृदय में जैसे चिनगारियाँ फूटती रहती हैं, नसों में, शिराओं में खून की जगह जैसे बिजली दौड़ती रहती है। जागरण, जैसे वृश्चिक-दंशन! निद्रा, जैसे शूल-शयन! यह ज़िन्दगी है या मौत? (कातरता से) मुझे बचाइए भगवान।"

इस प्रकार अम्बपाली जीवन के सारे सुख-ऐश्वर्य को छोड़कर भगवान की शरण में आकर दीक्षा ग्रहण कर लेती है। प्रेम-सौंदर्य और भोग-विलास से लेकर संन्यास तक की यात्रा उसकी जीवन-कथा है। बेनीपुरी ने प्रेम-सौंदर्य और जीवन-संघर्ष की परिणति जिस रूप में दिखायी है, वह भारतीय जीवन-धारा की अपनी विशेष पहचान है। जीवन के सारे द्वन्द्व सन्यास की शांति में समाहित हो जाते हैं – बेनीपुरी ने अम्बपाली के माध्यम से इस सत्य का प्रतिपादन किया है।

बेनीपुरी के अन्य नाटक हैं -'तथागत' और 'विजेता'। इसके अतिरिक्त उन्होंने एकांकी और रेडियो रूपक भी लिखे हैं, जिनमें प्रमुख हैं - 'सीता की माँ', (स्वोक्ति रूपक) 'संघमित्रा' (एकांकी), 'अमर ज्योति' (रेडियो रूपक), 'सिंहल विजय' (एकांकी), 'शकुन्तला' (रेडियो रूपक), 'राम राज्य, (रेडियो रूपक), 'नेत्रदान' (एकांकी), 'गाँव के देवता' (रेडियो रूपक) और 'नया समाज' (एकांकी)। विषय-वस्तु की दृष्टि से विचार किया जाय तो इनकी तीन श्रेणियाँ होंगी - सांस्कृतिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक और सामाजिक नाटक। बेनीपुरी की समाजवादी दृष्टि इतिहास, संस्कृति और समाज के बीच एक नया सम्बन्ध कायम करना चाहती है। अतीत और वर्तमान के अनुभव-संयोग से एक नये भविष्य के निर्माण की उनकी कल्पना है।

तथागत

अम्बपाली की कड़ी में बेनीपुरी का दूसरा नाटक है 'तथागत'। इसका प्रकाशन सन् 1948 ई. में हुआ। अपने मूल रूप में यह नाटक आकाशवाणी केन्द्र, पटना से बुद्ध-जयंती के अवसर पर, चार किश्तों में, प्रसारित हुआ था। इसमें भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व के कुछ उदात्त पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। लेखक के शब्दों में – 'वैभव-विलास में डूबा हुआ एक राजकुमार संसार के दुख-दर्द से क्षुभित-पीड़ित होकर घर छोड़ता है, घोर तपस्या करता है, निराशाओं पर निराशाएँ पाता है, अंत में ज्ञान की किरणें उसे प्राप्त होती हैं और फिर उसके प्रचार-प्रसार में वह लग जाता है। वहाँ भी तरह-तरह के विघ्न, उत्पीड़न, लांछन, किंतु अंत में सत्य की विजय होती है।" (भूमिका)

तथागत के जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्ष को नाटककार ने मुख्य रूप से चित्रित किया है, ताकि सामान्य मनुष्य भी उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सके। इस नाटक की रचना करते समय लेखक के समक्ष महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व मौजूद रहा है। उसने स्वीकार भी किया है – "जब मैं 'तथागत' लिख रहा था, मालूम होता था, महात्मा गाँधी के चरित्र के प्रभामंडल के बीच से मैं गुज़र रहा होऊँ।" इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्ध और गाँधी दोनों अपने-अपने युग के महानायक रहे। दोनों के व्यक्तित्व में कई समानताएँ भी हैं। बुद्ध के जीवन से गाँधी ने सत्य, अहिंसा और करुणा के आदर्श ग्रहण किये। अतः नाटक की रचना करते समय बेनीपुरी के मानस में बुद्ध के स्थान पर गाँधी की तस्वीर उभरना स्वाभाविक है। वैसे, बुद्ध के जीवन-प्रसंगों की स्वाभाविकता और सच्चाई की रक्षा के लिए लेखक ने बौद्ध-ग्रंथों की पर्याप्त सहायता ली है। इस नाटक की रचना का एक ख़ास उद्देश्य है। बेनीपुरी देश की नयी पीढ़ी के किशोरों और नवयुवकों के सामने बुद्ध के जीवन-संघर्ष, आशा-निराशा आदि के चित्र प्रस्तुत कर उन्हें प्रेरित करना चाहते हैं, ताकि सत्य के अनुसंधान की ओर वे प्रवृत्त हों, उसके लिए कष्ट उठाना सीखें और सारी विघ्न-बाधाओं के बीच अपनी मशाल लेकर बढ़ते हुए विजय प्राप्त करें।

'तथागत' नाटक में बहुत सारे पात्र (पुरुष एवं स्त्री) एक साथ आये हैं। पुरुष पात्रों में तथागत (बुद्ध) के अतिरिक्त उनके पिता शुद्धोदन, पुत्र राहुल, सखा उदय, शिष्य आनन्द, चचेरे भाई देवदत्त, सारथी छंदक, ज्योतिषी कोंडिन्य, तपस्वी साथी भद्रजित के अतिरिक्त राजगृह के सम्राट बिम्बसार, उनका पुत्र अजातशत्रु, वाराणसी के श्रेष्ठिपुत्र यश के साथ-साथ सचिव, नागरिक, पुरोहित, गड़ेरिया, भिक्षुक आदि का समावेश कथावस्तु के अन्तर्गत किया गया है। ठीक उसी प्रकार नारी-पात्रों में बुद्ध की माता माया, पत्नी यशोधरा, मौसी प्रजावती के साथ-साथ सुजाता, उसकी दासी पूर्णा, राजगृह की एक वृद्धा गौतमी, वैशाली की राजनर्तकी अम्बपाली और

श्रावस्ती की एक स्त्री माणविका का समावेश हुआ है। नाटक बुद्ध के जन्म के पूर्व की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होता है, जहाँ शुद्धोदन और माया लुम्बिनी वन में विचरण करते हुए वार्तालाप करते हैं और माया पति से अपने स्वप्न की चर्चा करती है। फिर वहीं शिविर में ही सिद्धार्थ का जन्म होता है।

नाटककार ने बुद्ध के जीवन में आये तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा के क्षणों का भी सहज-स्वाभाविक चित्रण किया है। बुद्ध और उनके तपस्वी सहयोगी भद्रजित के वार्तालाप का एक दृश्य है –

बुद्ध – मैं देख रहा था भद्रजित, ज्यों-ज्यों मैं तुम लोगों के निकट पहुँच रहा था, त्यों-त्यों तुम्हारी आँखों में आशंका, उपेक्षा, घृणा सघन होती जा रही थी।

भद्रजित – हमें लज्जित न कीजिए, भन्ते।

बुद्ध – मुझे वह दिन भूला नहीं था, जब मैं उग्र तपस्या को त्यागकर खाने-पीने लगा तो तुम लोगों ने कटु वचन कहे, गालियाँ दी और अभिशाप देकर चलते बने। तुम लोगों ने मुझे छोड़ दिया, किंतु मैंने ज्ञान के अनुसंधान को न छोड़ा और अंततः सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके ही रहा।

नाटककार ने उपेक्षा और अपमान के बीच भी बुद्ध के उस दृढ़ संकल्प को रेखांकित किया है, जो सत्य और ज्ञान के अनुसंधान के लिए आवश्यक है। यह उनके जीवन का ऐसा पहलू है, जिससे साधारण आदमी को भी आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

विजेता

'विजेता' बेनीपुरी का तीसरा नाटक है, जो मगध सम्राट चन्द्रगुप्त के जीवन को लेकर लिखा गया है। इसकी रचना सन् 1943 ई. में हज़ारीबाग जेल में ही 'अम्बपाली' लिखने के बाद शुरू हो गयी थी ; किंतु प्रकाशन बारह वर्षों के बाद सन् 1950 ई. में हो पाया। वैसे इस अवधि में नाटक के प्रारूप में काफ़ी हेर-फेर किया गया और इसे रंगमंच के अनुरूप बनाया गया। इस नाटक की रचना के मूल में बेनीपुरी की एक ख़ास दृष्टि रही है। उनका मानना है कि चन्द्रगुप्त पर जितने नाटक लिखे गये हैं, उनमें चाणक्य को ही प्रधानता दी गयी है और वह नाटक चन्द्रगुप्त का न होकर चाणक्य का हो गया है। चन्द्रगुप्त तो उसके इशारे पर नाचता है। बेनीपुरी ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि "इतिहास जहाँ चाणक्य के बारे में थोड़ा-सा उल्लेख करके चुप है, वहाँ साहित्य उसकी कूटनीतिज्ञता की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाता। यह प्रशंसा यहाँ तक बढ़ा दी गयी है कि चाणक्य एक धूर्त और नृशंस व्यक्ति-मात्र बन जाता है, और चन्द्रगुप्त उसके हाथ की कठपुतली-मात्र। कठपुतली

भी कैसी? शूद्र, वृषल आदि कहकर भारत के उस प्रथम चक्रवर्ती सम्राट को नीचे-से-नीचे गिराने की कोशिशें हुई हैं। इस महान पुरुष को उस गढ्ढे से निकालना चाहिए, ऐतिहासिक तथ्य और महत्त्व के अनुरूप ही उसे साहित्यिक रूप देना चाहिए, बारह वर्षों से मेरे मस्तिष्क में यह विचार चक्कर काट रहा था। उसी का फल यह नाटक है।"

किन्तु लेखक ने इसके सृजन में इतिहास की उपेक्षा नहीं की है, बल्कि ऐतिहासिक तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर उन्होंने चन्द्रगुप्त का जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया है। दरअसल बेनीपुरी ने अपनी समाजवादी आस्थाओं के अनुरूप चन्द्रगुप्त का मूल्यांकन उसकी योग्यता, प्रतिभा और पराक्रम के आधार पर किया है, न कि वर्ण या जन्म के आधार पर। एक स्थान पर वह चाणक्य के ही मुँह से कहलाते हैं – "मुझ पर यह यश मत थोपो चन्द्र! मुझे उस दिन का स्मरण है, जब एक दिन ब्राह्मण अपने सपनों में पागल बना आर्यावर्त के कोने-कोने में घूम रहा था—गाँवों में ढूँढता था, पगडंडियों पर ढूँढता था, राजपथों पर ढूँढता था – ढूँढता था एक ऐसा नायक– लोकनायक – जो उसके सपनों को सत्य का आधार दे सके, उन्हें रूप दे सके, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा कर सके, कि अचानक उसे एक दिन एक बच्चा दिखायी पड़ा। हाँ, वह बच्चा ही था। वह एक बच्चा, अनेक बच्चों के बीच। अनेक चरवाहे बच्चों के बीच एक ऊँचे टीले पर खड़ा वह उन्हें आदेश दे रहा था - देखो, वहाँ वह शत्रु का दुर्ग है, हमें उस पर चढ़ाई करनी है, उस पर अधिकार करना है।" बालक चन्द्रगुप्त में प्रतिभा का जो बीज विद्यमान है, उसका विकास चक्रवर्ती सम्राट के रूप में होता है।

'विजेता' नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है - पात्रों की कम संख्या में उपस्थिति। नाटक में कुल तीन पुरुष पात्र - चन्द्रगुप्त, चाणक्य और श्वेतकेतु हैं, और दो महिला पात्र - माँ और चन्द्रा। इस दृष्टि से यह नाटक सहज अभिनेय है। पात्र-पात्रियों की बहुलता से नाटक के मंचन में कठिनाई होती है। अतः बेनीपुरी ने इसे मंचोपयोगी बनाने के लिए पात्रों की संख्या कम कर दी है।

इस नाटक का इस दृष्टि से भी महत्त्व है कि ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा में यह बेनीपुरी का अंतिम नाटक है। इसके बाद वे सामाजिक नाटकों की रचना में प्रवृत्त होते हैं। 'अमर-ज्योति', 'राम राज्य', 'गाँव के देवता', 'नया समाज' आदि इसी प्रकार के सामाजिक विषयों पर आधारित रेडियो रूपक और एकांकी हैं। बेनीपुरी की कल्पना में एक शोषण-विहीन समता-मूलक समाज ही नया समाज होगा। परम्परा से चली आ रही सामाजिक-व्यवस्था में उनका विश्वास नहीं है, क्योंकि वह शोषण और उत्पीड़न पर आधारित समाज-व्यवस्था है। 'नया समाज' शीर्षक एकांकी में वे विनय और कैलाश के परस्पर वार्तालाप के द्वारा इस तथ्य को उजागर करते हैं।

कैलाश गाँव के ज़मींदार का पढ़ा-लिखा बेटा है और विनय उसी गाँव के एक ग़रीब किसान का शिक्षित बेटा। विनय कैलाश को कहता है – "यही है तुम्हारा समाज– आज का समाज। जिसमें अन्नदाता किसान भूखों मरता है, जहाँ वैभवदाता मजदूर धक्के खाते फिरते हैं, जहाँ पढ़े-लिखे लोग या तो परेशान हैं या सारे अनैतिक कार्य किया करते हैं, जहाँ माताएँ और बहनें अर्द्ध-नग्न घूमा करती हैं और जहाँ देश के भावी नेता वे सुकुमार बच्चे बिलबिलाते चलते हैं। और एक मुट्ठी लोग उनके सीने पर बैठ कर मौज उड़ा रहे हैं। कैलाश, कैलाश, यह समाज चल नहीं सकता, चल नहीं सकता।"

विश्व में समाजवादी क्रांति की सफलता के फलस्वरूप बेनीपुरी की नये समाज की धारणा बिल्कुल साफ है। वे भारत के वर्णाश्रित सामंती समाज की जगह एक समता-मूलक समाज की कल्पना करते हैं। अपने संघर्षमय राजनीतिक जीवन के अनुभव को वे रचनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित और प्रतिपादित करते हैं। 'नया समाज' एकांकी का विनय स्वयं बेनीपुरी का प्रतिनिधित्व करता है। एक स्थान पर विनय कैलाश से कहता है - "कैलाश, सवाल व्यक्ति का नहीं, सवाल है प्रणाली का। जहाँ मेहनत करने वाले, उत्पादन करने वाले भूखों मरें, नंगे रहें, और बैठे-ठाले लोग मौज उड़ायें, जहाँ जन्मते ही कोई अपने को परम पवित्र और अन्य लोगों को अछूत समझने की गुस्ताखी करे, जहाँ नारियों को अपना सौंदर्य और यौवन बेचने को मजबूर होना पड़े, जहाँ कुत्ते-बिल्लियों को दूध पिलाया जाय और आदमी के बच्चे दाने-दाने को बिललाते फिरें – कैलाश, जहाँ ग़रीबी, गुलामी, अनैतिकता और अत्याचार का बोल-बाला हो, उस समाज की भित्ति में ही राक्षसता है।" इस प्रकार बेनीपुरी ने विषम अर्थव्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था पर एक साथ चोट की है।

यह भी एक दिलचस्प और गौरतलब बात है कि बेनीपुरी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में मुख्य रूप से बौद्धकालीन इतिहास को ही प्रतिपाद्य विषय बनाया है। इसका एक विशेष कारण है कि बौद्ध-दर्शन उनके समाजवादी विचारों के ज़्यादा निकट है। उसमें छुआछूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं था और वह परम्परागत सनातनी व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा हुआ था। उसमें लोकभाषा और लोक-संस्कृति को सम्मान प्राप्त था। बेनीपुरी के समाजवादी मन को ये बातें अधिक आकर्षित कर पायीं। इसलिए अम्बपाली', 'तथागत', 'संघमित्रा', 'सिंघल-विजय', 'नेत्रदान' आदि अनेक नाटक और एकांकी उन्होंने बौद्ध साहित्य और इतिहास को विषय बना कर लिखे। इन नाटकों का सबसे बड़ा गुण है -- अभिनेयता। बेनीपुरी ने रंगमंच को ध्यान में रखकर इन नाटकों की रचना की है, बल्कि आवश्यकता के अनुसार उन्होंने दृश्य-विधान में परिवर्तन भी किया है और रंगमंच के अनुरूप आकार दिया है।

उपन्यास

गद्य की एक सशक्त और लोकप्रिय विधा उपन्यास भी है। इसमें जीवन के यथार्थ-चित्रण की गुंजाइश अधिक होती है। जीवन की घटनाओं को कथा-सूत्र में पिरोकर उपन्यासकार प्रस्तुत करता है, जिसके कारण उसमें रोचकता आ जाती है। बेनीपुरी ने नाटकों और शब्द-चित्रों के अलावा उपन्यास भी लिखे हैं। इनके उपन्यासों को प्रयोगवादी उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि शिल्प-विधान के स्तर पर इन्होंने कतिपय नवीन प्रयोग किये हैं। इनके दो प्रमुख उपन्यास हैं – 'पतितों के देश में' और 'कैदी की पत्नी'। इन दोनों उपन्यासों में बेनीपुरी की प्रयोगशीलता दिखलायी पड़ती है।

पतितों के देश में

बेनीपुरी का यह पहला उपन्यास है। इसका मुख्य भाग सन् 1930 ई. में हज़ारीबाग जेल में लिखा गया था। एक सत्य घटना के आधार पर यह कैदी की कहानी है। इस औपन्यासिक कृति में लेखक ने शिल्प-संरचना के स्तर पर एक नया प्रयोग किया है। कथा-विधान अलग-अलग शीर्षकों में है, जिससे हर घटना अपने में एक स्वतंत्र कहानी लगती है, किंतु सबको एक साथ मिला देने पर उपन्यास का रूप बन जाता है।

आकार की दृष्टि से यह एक लघु उपन्यास है। लेखक ने इसे 'बाहरी झाँकी' और 'भीतरी झाँकी' नाम से दो भागों में बाँटा है और इनके भीतर अलग-अलग शीर्षकों से कथा-विन्यास किया है। बाहरी झाँकी के अन्तर्गत 'जवानी के दिन', 'फागुन का महीना', 'वाह मनोहर भैया', 'बरसात आयी', 'स्वप्न-लोक', 'संगार की नज़र', 'आँखों में नींद कहाँ', 'ठन कर रही', और 'पिअरिया-पिअरिया' शीर्षक से कुल नौ कथा-सूत्र पिरोये गये हैं।

इसी तरह भीतरी झाँकी में 'यह पाषाणपुरी', 'कोल्हू का बैल', 'गीदड़ कुटान', 'जेल कल्लुओं का है', 'कामदेव कहाँ नहीं है', 'तिकठी और बेंत', 'पगली घंटी', 'फाँसियाँ-भी देखीं' और 'पत्थर का फूल' नौ कथासूत्र हैं। इन अठारह कथा-सूत्रों को मिलाकर यह उपन्यास पूरा होता है, जिसका नामकरण हुआ है -- 'पतितों के देश में'। यह जेल-जीवन का एक जीवंत दस्तावेज़ है। उपन्यास की नायिका पिअरिया एक ग्रामीण युवती है। गाँव के परिवेश में लेखक ने इस प्रेम-कथा का विकास दिखलाया है। उस परिवेश की चर्चा करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है – "वह मचान पर आ बैठती। कभी गीली मिट्टी लेकर कमठे के लिए गोलियाँ बनाती, कभी मकई के सूखे पत्तों से गदरा बुनने की कोशिश करती। कभी मस्ती में गीत टेरती। मेरा खेत उसके खेत के निकट ही था। उसमें कौनी थी। कौनी की देख-भाल और घास-छीलना-- दोनों काम साथ ही करने के ख्याल से मैं वहाँ प्रायः होता। शायद पिअरिया का

आकर्षण भी आस-पास ही रहने को बाध्य करता। अतः इन तमाशों को हज़ार आँखों से देखता, इन गीतों को लाख कानों से सुनता। बदनामी के डर से इधर मैं उससे कुछ दूर ही रहने की कोशिश करता, उसे भी यह बात अच्छी तरह समझा दी थी, किंतु जब कभी झिसी-फुही होने लगती या धूप कड़ी हो जाती, मैं उसके मचान पर पहुँच जाता। मुस्कुराहटों का आदान-प्रदान होता, व्यंग्य-विनोदों की लेन-देन होती।"

इस तरह ग्रामीण परिवेश में प्रेम-भावना का सहज विकास दिखलाया गया है। किन्तु बाद की विषम परिस्थितियों ने व्यवधान पैदा किया है, और समाज के षड्यंत्र के कारण प्रेमी मनोहर को जेल जाना पड़ता है। पिअरिया की जगह एक दूसरी औरत को गवाही के लिए खड़ा कर दिया जाता है और वह पिअरिया बनकर मनोहर पर बलात्कार का अभियोग लगाती है। इसके बाद की घटनाएँ जेल-जीवन की व्यथा-कथा से जुड़ी हैं। बेनीपुरी ने अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रेमी युवक मनोहर की पीड़ा का वर्णन किया है। जेल के भीतर एक ज़िन्दगी का यथार्थ बहुत ही विश्वसनीय और प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। बेनीपुरी के शब्दों में यही 'भीतर की झाँकी' है।

कैदी की पत्नी

बेनीपुरी का दूसरा उपन्यास है – 'कैदी की पत्नी'। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1953 ई. में हुआ, किंतु इसकी रचना भी कोई बारह साल पहले ही हो चुकी थी, जैसा कि लेखक ने उपन्यास की भूमिका में स्वीकार किया है। राजनीतिक जीवन के संघर्षपूर्ण अनुभवों को उपन्यास का विषय बनाया गया है। यह एक आत्म-कथात्मक उपन्यास है। बेनीपुरी स्वयं अपने जेल-जीवन की घटनाओं, परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं को कथा-सूत्र में पिरोकर उपन्यास का रूप देते हैं। उनकी राय में राजनीतिक व्यक्तियों की जेल-यात्राओं में सबसे अधिक पीड़ा उनकी पत्नियों को होती है। राजनेताओं की तो जयकार होती है, उन्हें फूलमालाएँ मिलती हैं और एक प्रकार से जेल-यातना की क्षतिपूर्ति हो जाती है। लेकिन परिवार का सारा दायित्व और पति से विलग होने की पीड़ा पत्नियाँ झेलती हैं। उन्हें किन तकलीफों और परेशानियों में ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ती है, इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। 'कैदी की पत्नी' में बेनीपुरी ने इन्हीं मनोदशाओं की चर्चा की है।

संरचना की दृष्टि से 'कैदी की पत्नी' भी एक प्रयोगवादी उपन्यास है। इसमें भी कथा-सूत्रों के अलग-अलग नाम हैं, जैसे 'स्वतिश्री', 'गुड़िया', 'पंख फटे', 'उड़न खटोला', 'कल्पना-पुरुष', 'अनजान देश', 'वे', 'सौगात', 'विराम', 'विदेश', 'बिजली', 'तूफ़ान', 'मान', 'मातृत्व', 'तपस्या', 'भिखारिन' और 'एतद्धि'। इन सारे कथा-सूत्रों को मिलाकर उपन्यास की कथावस्तु निर्मित होती है, जिसमें एक छोटी लड़की से युवती और फिर युवती से पत्नी बनी एक नारी की व्यथा-कथा अंकित की गयी है। एक स्थान पर उपन्यासकार लिखता है –

"संक्षेप में, जो रानी थी, वह भिखारिन हो गयी। एक बार की बात उसे याद है। वे एक वर्ष के लिए जेल गये थे। यह एक वर्ष उसने कैसे बिताया था? चाचाजी के बाद 'उनकी' गैरहाज़िरी में, वही घर की मालकिन हुई। देवर नाबालिग, घर की स्त्रियों की जैसे मत मारी गयी। घर-बाहर उसे ही देखना पड़ता। उस साल फसल बिल्कुल ख़राब गयी। कर्ज वालों के तकाजे इतने थे कि नये कर्ज की चर्चा ही फिजूल थी। गहने बिक चुके थे। वह क्या करे? सिर्फ एक साड़ी पर उसने एक साल बिता दिया।"

'कैदी की पत्नी' का यह दयनीय चित्र दरअसल बेनीपुरी की अपनी पत्नी का ही चित्र है। स्वतंत्रता-संग्राम में उनकी जेल-यात्राओं के कारण पत्नी और परिवार के अन्य लोगों को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और मुसीबतें झेलनी पड़ीं, उनका प्रामाणिक चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास की नायिका 'रानी' वस्तुतः बेनीपुरी की पत्नी हैं, जिन्हें वे 'रानी' कहकर सम्बोधित करते हैं। यह उपन्यास उन्हीं के नाम से समर्पित किया गया है और समर्पण में बेनीपुरी ने लिखा है – "अपनी रानी को, जिसके सुख-दुःख की तस्वीरें अंकित करने की चेष्टा है इसमें।" इस प्रकार 'कैदी की पत्नी' लेखक का आत्म-कथात्मक उपन्यास है।

कहानी

बेनीपुरी ने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को विषय बनाकर अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं। बल्कि उनके कई शब्द-चित्र तो कहानियों की तरह ही हैं। किन्तु उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'चिता के फूल' नाम से प्रकाशित है।

चिता के फूल

सात लम्बी कहानियाँ का यह संग्रह सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि से जुड़े यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। संग्रह की भूमिका में बेनीपुरी ने लिखा है कि "अपनी इन सात कहानियों में देश और समाज की विषम स्थिति से उत्पन्न मृत्यु और संहार की विभीषिकाओं को ही मैंने कलात्मक रूप देने की चेष्टा की है। किन्तु इनमें ढँकने की कोशिशें कहीं नहीं की गयी है, बल्कि उभारने का ही प्रयास है। हम इन विभीषिकाओं को देखें, समझें और अपने समाज को ऐसा नया रूप देने की चेष्टा करें, जिसमें हमें ऐसे दृश्य न देखने पड़ें।"

एक समाजवादी विचारक होने के कारण बेनीपुरी शोषण और विषमता के विरुद्ध समता-मूलक समाज की स्थापना की लड़ाई लड़ते रहे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी उनका यह संघर्ष चलता रहा और सक्रिय राजनीति के अतिरिक्त रचनाओं के द्वारा भी उन्होंने अपनी आवाज़ बुलन्द की। संग्रह की कई कहानियों में स्वतंत्रता-संग्राम में अपनी कुर्बानी देने वाले शहीदों की स्मृति गूँजती है। संग्रह की पहली

कहानी 'चिता के फूल' का नायक रामू बयालीस के आन्दोलन में गिरफ़्तार होता है और पटना कैम्प-जेल में रखा जाता है। बीच-बीच में उसके पिता गाँव से आकर मिलते हैं। परिवार के लोगों पर अंग्रेज़ी सरकार की ओर से जुल्म ढाये जाते हैं। जमीन-जायदाद की कुर्की हो जाती है। बूढ़े पिता को भरोसा है कि एक दिन पुत्र जेल से बाहर आयेगा और स्थिति सुधर जायेगी, किंतु रामू कभी बाहर नहीं आता। जेल में ही एक दिन उसकी मौत हो जाती है। साँस बंद होने से पहले साथियों से वह अपनी चिन्ता व्यक्त करता है कि देश को आज़ाद होते नहीं देख पाया।

बेनीपुरी का कलाकार हृदय इस वेदना से भरा हुआ है कि ऐसे असंख्य नौजवानों ने देश के लिए कुर्बानी दी, पर इतिहास में कहीं उनका नाम नहीं है। वे लिखते हैं – "कोई वहाँ ऐसा नहीं था, जो इसकी घोषणा करता कि रामू ने अपने को देश के लिए कुर्बान कर दिया, किसी के मुँह से उस दिन रामू का जयकार नहीं निकला, उसका जनाज़ा फूलों-भरा भी नहीं निकल पाया था। एक जंगली फूल की तरह वह खिला और अनदेखे झड़ पड़ा – उसकी शहादत की अमर साक्षिणी एकमात्र माँ-गंगा रहीं, जिनके पावन जल में, जी भरकर रो-धो लेने के बाद, उसके पिता ने काँपते हाथों से उसकी चिता से चुनकर पाँच फूल अर्पित किये – चिता के वे फूल, श्वेत-शुभ्र, पावन-पवित्र।"

इसी संग्रह में बेनीपुरी की प्रसिद्ध कहानी 'कहीं धूप कहीं छाया' भी है, जो सामंती-व्यवस्था और ज़मींदारी-प्रथा की क्रूरता और हृदय-हीनता का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। बाबू साहब की बेटी की शादी में गाँव का मज़दूर मखना अपनी बीमार माँ को छोड़कर बेगार करने नहीं जाता है। इसके लिए ज़मींदार उसे पकड़वा कर मँगाते हैं और इतनी मार पड़ती है कि वह दम तोड़ देता है। उसकी बेसहारा माँ विलाप करती रह जाती है। एक तरफ विवाह के मंगल-गीत और दूसरी तरफ़ मौत का विलाप। बेनीपुरी ने नृशंस सामंती समाज के अन्तर्विरोधों को उभार कर रख दिया है।

अन्य कहानियाँ में भी स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान प्राप्त अनुभवों और जेल-जीवन के विभिन्न प्रसंगों को चित्रित किया गया है। अतः बेनीपुरी की कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के विभिन्न रूपों का चित्रण करती हैं।

अन्य रचनाएँ

बेनीपुरी ने शब्द-चित्र, नाटक, उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त गद्य की अन्य विधाओं में काफी लिखा है। उन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ सम्भव नहीं है। अपने समय की राजनीतिक धारा और साहित्यिक धारा से वे गहरे रूप में जुड़े हुए थे। इसलिए साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त उन्होंने कुछेक राजनेताओं की जीवनियाँ और राजनीतिक विवेचनाएँ भी लिखीं। इनमें सर्वाधिक चर्चित कार्ल मार्क्स और जयप्रकाश

नारायण की जीवनी है। बेनीपुरी मार्क्स की विचारधारा और क्रांति-चेतना से प्रभावित थे और जे. पी. के वे राजनीतिक सहयोगी और साथी थे। अतः जयप्रकाश नारायण की पहली प्रमाणिक जीवनी उन्होंने लिखी और भारतीय राजनीति में उनके महत्त्व और योगदान को रेखांकित किया। इसी तरह 'रूस की क्रांति' और 'लाल-चीन' नामक पुस्तकों में इन देशों की समाजवादी क्रांति और उसकी परिस्थितियों का विवेचन किया गया है।

बेनीपुरी ने कतिपय साहित्यिक कृतियों का सम्पादन भी किया है और व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ लिखी हैं। इस दृष्टि से 'विद्यापति की पदावली' विशेष उल्लेखनीय है। 'बिहारी-सतसई', 'रवीन्द्र भारती', 'इकबाल' आदि का भी उन्होंने सफल सम्पादन किया है और अपनी ओर से टीकाएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों के लिए कोई एक दर्जन से ऊपर मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें भी उन्होंने लिखी हैं। बाल साहित्य लिखने की प्रवृत्ति उनमें बच्चों की पत्रिका 'बालक' मासिक के सम्पादन-काल (1926) में पैदा हुई और उन्होंने उत्कृष्ट बाल-साहित्य की रचना की। इसके साथ ही देश-विदेश की अनेक यात्राओं में उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किये, उनके आधार पर रोचक यात्रा-वृत्तांत लिखे। यात्रा एवं भ्रमण सम्बन्धी उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं– 'पैरों में पंख बाँधकर', 'पेरिस नहीं भूलती', 'उड़ते चलो, उड़ते चलो' तथा 'मेरे तीर्थ'। इन यात्रा-वृत्तांतों में केवल भौगोलिक वर्णन नहीं, बल्कि इतिहास, दर्शन, राजनीति, साहित्य और संस्कृति का अनोखा अनुभव-संगम है।

बेनीपुरी की व्यापक और वैविध्यपूर्ण रचनाओं के आधार पर जगदीश चन्द्र माथुर ने उनके साहित्य में तीन प्रकार के वातावरण का उल्लेख किया है – (1) पहला तो कुतूहलवर्द्धक रचनाएँ, जो उनकी बाल-सुलभ जिज्ञासा से प्रेरित हुईं। सन् 1923-28 में लिखी गयी 'हीरामन तोता' से लेकर 51-52 की 'पैरों में पंख बाँधकर', 'जीव-जन्तु' आदि रचनाएँ। (2) दूसरा था कैदी जीवन की घुटन का वातावरण' जिसके बने दबाव में उनकी दृष्टि इतनी पैनी हो गयी कि दैन्य, अत्याचार और यंत्रणा की हल्की से हल्की और गहरी से गहरी कालिमा को वह शब्दों में उतार लेते थे। 'पतितों के देश में', 'कैदी की पत्नी' या 'माटी की मूरतें' जैसी कृतियों में यह वातावरण है। (3) और, तीसरा वातावरण जो बेनीपुरी के सर्जनात्मक साहित्य में मुखर हुआ है, वह है – उल्लास का वातावरण। 'अम्बपाली' नाटक और 'गेहूँ और गुलाब' में इस वातावरण की अभिव्यक्ति हुई है। सच पूछिए तो उल्लास, उमंग और मस्ती समस्त बेनीपुरी-साहित्य का मूल स्वर है।" (नयी धारा, बेनीपुरी-स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 15, अप्रैल-अगस्त 1969)

बेनीपुरी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण के सम्बन्ध में दिनकर जी ने लिखा है – "उनके भीतर केवल वही आग नहीं थी, जो कलम से निकलकर साहित्य बन जाती है। वे उस आग के धनी थे, जो राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों

को जन्म देती है, जो परम्पराओं को तोड़ती और मूल्यों पर प्रहार करती है, जो चिन्तन को निर्भीक और कर्म को तेज़ बनाती है। संक्षेप में वे क्रांतिकारी मनुष्य थे और उनका ध्येय नये मूल्यों का स्थापन एवं नये समाज का निर्माण था। समाज जब बदलने लगता है, वह अपनी प्रक्रिया को तेज करने के लिए कुछ बेचैन मनुष्यों को जन्म देता है। बेनीपुरी जी के भीतर बेचैन कवि, बेचैन चिन्तक, बेचैन क्रांतिकारी और निर्भीक योद्धा सभी एक साथ निवास करते थे।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त, 1969 ई.) इसमें दो राय नहीं कि बेनीपुरी के साहित्य में जो प्रखरता और परिवर्तन-चेतना है, वह उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व की उपज है। उनका साहित्य और जीवन दोनों एक दूसरे के पूरक और प्रतिबिम्ब हैं।

बेनीपुरी ने साहित्यिक चुनौतियों को भी स्वीकार किया था और उनका उत्तर दिया था। मिश्र बंधुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' में विद्यापति को स्थान नहीं दिया था। बेनीपुरी भला इस अन्याय को कैसे सह सकते थे। उन्होंने विद्यापति-पदावली का सम्पादन कर उसकी टीका लिखी और हिन्दी संसार का ध्यान आकर्षित किया। दिनकर जी ने लिखा है –

"बेनीपुरी जी का पत्रकार और समाज-सेवी वाला जीवन इतना सघन था कि उन्हें साहित्य लिखने का समय अपेक्षाकृत कम मिला। उनकी विद्यापति-पदावली और बिहारी सतसई की टीका उस समय निकली, जब वे 'बालक' का सम्पादन कर रहे थे। मिश्र बंधुओं का हिन्दी-नवरत्न जब पहले पहल निकला, तब उसमें कबीर दास को स्थान नहीं दिया गया था। उसके दूसरे संस्करण में कबीरदास भी सम्मिलित कर दिये गये, किंतु विद्यापति को मिश्र बंधुओं ने तब भी स्थान नहीं दिया। बेनीपुरी जी ने इस अन्याय को बड़े जोर से ललकारा था। बेनीपुरी के भीतर जो स्रष्टा छिपा हुआ था, उसकी चिनगारी उनके अख़बारी लेखों में भी छिटकती आयी थी। किंतु उस स्रष्टा के असली चमत्कार तब प्रकट हुए, जब बेनीपुरी जी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में जेल गये और वहाँ उन्होंने 'अम्बपाली' नाटक और 'माटी की मूरतें' नामक पुस्तकों की रचना की। जेल से जब वे लौटे, उनका स्रष्टा अपने पूरे जागरण में था।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त, 1969 ई.) साहित्य की विभिन्न विधाओं में दर्जनों पुस्तकों का सृजन कर उन्होंने अपने जाग्रत-स्रष्टा का प्रामाणिक परिचय भी दिया।

वस्तुतः बेनीपुरी का समस्त लेखन एक सक्रिय राजनीति-कर्मी, एक संघर्षशील समाजवादी और एक संवेदनशील स्रष्टा के अनुभव-संसार की अभिव्यक्ति है। उनके साहित्य को एक नये सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण का अभियान कहा जा सकता है।

4
हिन्दी-पत्रकारिता और बेनीपुरी

हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ हुआ है। देश की स्वतंत्रता के लिये जबसे आन्दोलन तेज़ हुआ, लगभग उसी समय से हिन्दी पत्रकारिता भी शुरू हुई। यह एक विशेष ध्यान देने वाली बात है, क्योंकि इस तरह हिन्दी पत्रकारिता सीधे राष्ट्रीय आन्दोलन की उपज बन जाती है, जो कि ऐतिहासिक तथ्य है। हिन्दी का पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' 30 मई, 1826 ई. को कलकत्ता से पं. युगल किशोर सुकुल के सम्पादन में निकला, किंतु आर्थिक कठिनाई के कारण यह 11 दिसम्बर, 1827 ई. को बंद हो गया। इसके बाद 10 मई, 1829 को 'बंगदूत' प्रकाशित हुआ। सन् 1854 ई. में कलकत्ता से हिन्दी दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके संपादक श्री श्यामसुंदर सेन थे। 'बनारस अख़बार' 1845 ई. में प्रकाशित हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था। इसके बाद तारामोहन मिश्र ने साप्ताहिक 'सुधाकर' का प्रकाशन हिन्दी और बाङ्ला में एक साथ किया। 'मालवा अख़बार' 1849 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी दौर में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पादन में 'कवि वचनसुधा' का प्रकाशन हुआ। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' भी निकाली थी। सन् 1873 ई. में कलकत्ता से ही 'बिहार बंधु' का प्रकाशन हुआ, जिसके संस्थापक-संपादक पं. केशव राम भट्ट थे। सन् 1874 ई. में इसका प्रकाशन पटना से होने लगा और यहीं इसका प्रेस भी 1875 ई. में स्थापित हो गया।

'बिहार बंधु' के पूर्व सम्पादक मुंशी हसन अली ने 'मोतीचूर' नाम से एक हिन्दी मासिक का प्रकाशन किया। 1880 ई. में पटना के खड्गविलास प्रेस से एक दूसरा मासिक पत्र 'विद्या विनोद' निकला, जिसके सम्पादक पं. बद्रीनाथ थे। सन् 1883 ई. में यही से 'भाषा प्रकाश' निकला। इसके बाद 'हरिश्चन्द्र कला' का प्रकाशन हुआ, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाएँ मुख्य रूप से छपती थीं। लगभग पैंतीस वर्षों तक यह पत्रिका प्रकाशित होती रही। इसके अतिरिक्त खड्ग विलास प्रेस से ही 'शिक्षा' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका चालीस वर्षों तक निकलती रही, जिसमें शिक्षा सम्बन्धी लेख और समाचार प्रकाशित होते थे। सन् 1890 ई. में बिहार का प्रथम हिन्दी दैनिक 'सर्व हितैषी' बाबू महावीर प्रसाद के सम्पादन में निकला, किंतु थोड़े दिनों के बाद यह बन्द हो गया।

बिहार बंधु प्रेस बाँकीपुर चौहट्टा में स्थित था। इसके मुद्रक श्री यदुनाथ राय थे। प्रेस के संचालन का दायित्व पं. केशव राम भट्ट पर था, जो बाद में 'बिहार बंधु' के सम्पादक हुए। प्रेस के कम्पोजिंग का काम भी उनके परिवार के लोग करते थे, क्योंकि उस समय प्रशिक्षित कम्पोजीटरों का अभाव था। वस्तुतः 'बिहार बंधु' के संचालक बिहार शरीफ़ के पं. मदनमोहन भट्ट थे। केशवराम भट्ट उनके छोटे भाई थे, जो उस समय बिहार शरीफ़ के ही किसी स्कूल में शिक्षक थे। पं. मदन मोहन भट्ट ने अपने मित्र मुंशी हसन अली को 'बिहार बंधु' की ज़िम्मेदारी केशवराम भट्ट के साथ सौंपी थी। इसके प्रकाशन में दरभंगा, हथुआ तथा डुमराव राज से भी सहयोग मिलता था। सन् 1915 ई. में 'बिहार बंधु' का प्रकाशन बन्द हो गया। कुछ अन्तराल के बाद 21 मार्च, 1922 ई. से डा. विश्वेश्वर दत्त मिश्र एवं पाठक प्रमोद शरण शर्मा के प्रयास से पुनः इसका प्रकाशन पटना शहर से प्रारम्भ हुआ। इसका सम्पादन करने लगे पाठक प्रमोद शरण शर्मा। 24 जनवरी, 1923 ई. से इसका प्रकाशन फतुहा से होने लगा, जहाँ पाठक जी रहते थे। इसके सम्पादकों में मुंशी हसन अली, पं. केशवराम भट्ट, साधोराम भट्ट, नन्दकुमार देव शर्मा, पं. दामोदर शास्त्री सप्रे, गोपाल राम गहमरी, पं. शिवनन्दन त्रिपाठी, गोवर्द्धन लाल गोस्वामी, कमला प्रसाद वर्मा, पाठक प्रमोद शरण शर्मा-जैसे अनेक प्रमुख लोग हुए।

सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1903 ई. में इसके सम्पादन का भार पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिया। यह उस युग की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका थी, जिसमें प्रकाशित होना लेखकों के लिए गौरव का विषय था। द्विवेदी जी ने काफी कठोरता के साथ सम्पादक-धर्म का पालन किया।

सन् 1901 ई. में बम्बई से पं. शंकर शास्त्री ने 'भारत धर्म' पत्र निकाला जो सन् 1912 ई. तक चलता रहा। यह एक साथ हिन्दी, मराठी और गुजराती तीन भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसी तरह बम्बई से ही सन् 1906 ई. में 'शर्मन समाचार', 'ज्ञान सागर समाचार' और 'स्वदेशी' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ। प्रसिद्ध पत्रकार पं. माधव राव सप्रे ने 1905 ई. में नागपुर से 'हिन्दी ग्रंथमाला' मासिक का प्रकाशन शुरू किया। नागपुर से ही लोकमान्य तिलक ने 1905 में मराठी पत्र 'केसरी' का हिन्दी संस्करण 'हिन्दी केसरी' नाम से निकाला। इसी प्रकार सन् 1904 ई. में ग्वालियर से 'जियाजी प्रताप' नामक साप्ताहिक निकला, जो सन् 1949 तक प्रकाशित होता रहा। बाद में इसका नाम 'मध्य भारत संदेश' हो गया। सन् 1914 ई. में आगरा से गणेश दत्त शर्मा इन्द्र ने 'बाल मनोरंजन' नामक मासिक पत्र निकाला, जिसका नाम बाद में 'हिन्दी सर्वस्व' हो गया। प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से सन् 1913 ई. में 'सम्मेलन पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक गिरिजा कुमार घोष थे। सन् 1914 ई. में रामजी लाल शर्मा के सम्पादन में 'विद्यार्थी'

और सन् 1915 ई. में गोपालादेवी के सम्पादन में 'शिशु' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् 1929 ई. में 'माया' का प्रकाशन क्षितीन्द्र मोहन मित्र के सम्पादन में और 1931 ई. में 'हिन्दुस्तानी' का प्रकाशन रामचन्द्र टंडन के सम्पादन में हुआ। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने 1939 ई. में कालाकाँकर से 'रूपाभ' निकाला। बनारस से 'जागरण' नामक साहित्यिक पाक्षिक सन् 1932 से निकल रहा था, जिसके संचालक पं. विनोदशंकर व्यास थे। इस पत्र के सम्पादक आचार्य शिवपूजन सहाय थे। बाद में यह पत्र साप्ताहिक हो गया और प्रेमचन्द के सम्पादन में सरस्वती प्रेस से निकलने लगा।

उस दौर की तीन और पत्रिकाओं – 'माधुरी', 'चाँद' और 'सुधा' का हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के विकास में विशेष योगदान है। सन् 1921 ई. में लखनऊ से 'माधुरी' का, सन् 1922 में प्रयाग से 'चाँद' और 1927 में 'सुधा' का तथा सन् 1930 में काशी से 'हंस' का प्रकाशन हुआ। 'हंस' के संस्थापक-सम्पादक प्रेमचन्द थे। इसी प्रकार हरिभाऊ उपाध्याय के सम्पादन में सन् 1928 में अजमेर (राजस्थान) से 'त्याग भूमि' का प्रकाशन हुआ। सन् 1933 ई. में जयपुर से लाड़ली नारायण निगम के सम्पादन में 'प्रभात' का प्रकाशन हुआ, जो कुछ दिनों के बाद बंद हो गया। पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने सन् 1919 ई. में, जबलपुर से, 'कर्मवीर' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके संपादक माधव राव सप्रे थे। बाद में सन् 1925 ई. में 'कर्मवीर' खंडवा से प्रकाशित होने लगा और स्वयं माखनलाल चतुर्वेदी इसके सम्पादक हो गये। एक दूसरी प्रमुख साहित्यिक पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन सन् 1926 ई. में प्रारम्भ हुआ। यह मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति की पत्रिका थी, जिसके सम्पादक कमलाशंकर मिश्र थे। बाद में कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने कई वर्षों तक इसका सम्पादन किया।

इस दौर की एक उल्लेखनीय बात यह थी कि स्वतंत्रता-आन्दोलन की लहर को तेज़ करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। ब्रिटिश शासन का विरोध करना और देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार करना इस दौर की हिन्दी पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य था। इस दृष्टि से सन् 1929-30 ई. में काशी से प्रकाशित 'रणभेरी' का उल्लेखनीय स्थान था। इसके नियमित लेखकों में बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, आचार्य नरेन्द्र देव, रामचन्द्र वर्मा आदि प्रमुख थे। सन् 1948 ई. में पं. बेचन शर्मा उग्र के सहयोग से 'मतवाला' का पुनः प्रकाशन शुरू हुआ। यह साहित्यिक पत्रकारिता का दौर था। लखनऊ से यशपाल के सम्पादन में 'विप्लव', कुँवर नारायण के सम्पादन में 'युग चेतना' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। आचार्य नरेन्द्र देव के सम्पादन में एक पत्रिका निकली जिसका नाम था – 'संघर्ष'। स्वातंत्र्य-भावना और राजनीतिक-चेतना के प्रसार में इस पत्रिका की विशेष भूमिका थी। अन्य

साहित्यिक पत्रिकाओं में आगरा से डा. राम विलास शर्मा के सम्पादन में 'समालोचक', किशोरी दास वाजपेयी के सम्पादन में 'मराल', राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के सम्पादन में 'सरस्वती संदेश', डा. सत्येन्द्र के सम्पादन में 'साधना' का प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर-काल में हिन्दी पत्रकारिता के विकास में 'धर्मयुग', 'सारिका' (बम्बई), 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'दिनमान', 'कादम्बिनी', 'जन', 'सरिता' (दिल्ली), 'कल्पना' (हैदराबाद), 'ज्ञानोदय' (कलकत्ता), 'नयी कहानियाँ', 'कहानी' (दिल्ली) आदि पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में हिन्दी के अनेक दैनिक समाचार प्रकाशित हुए। इनमें प्रमुख थे – 'हिन्दोस्थान', 'भारतोदय', 'भारत मित्र', 'भारत जीवन', 'विश्वमित्र', 'आज', 'अभ्युदय', 'प्रताप', 'अर्जुन' आदि। तदुपरान्त बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'नयी दुनिया', 'जागरण', 'अमर उजाला', पंजाब केसरी', आदि का प्रकाशन शुरू हुआ। इन पत्रों से हिन्दी पत्रकारिता का विस्तार तो हुआ ही, पत्रकारिता के स्तर में भी वृद्धि हुई।

बिहार में ही, पटना के अतिरिक्त दूसरे शहरों से भी, इस दौर में अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। आरा नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से पं. सकलनारायण शर्मा के सम्पादन में 'नागरी हितैषी' का प्रकाशन हुआ। बाद में श्री ब्रजनन्दन सहाय इसके सम्पादक हुए और पत्रिका का कलेवर पूरी तरह साहित्यिक हो गया। सन् 1910 ई. तक इसका प्रकाशन चलता रहा। आरा से ही एक दूसरी पत्रिका 'मनोरंजन' पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा के सम्पादन में निकली। यह पत्रिका तीन वर्षों तक चली और काफ़ी लोकप्रिय हुई।

सन् 1903 ई. में औरंगाबाद (गया) से एक मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी उपदेश लहरी' नाम से प्रकाशित हुई। कुछ दिनों के बाद यह 'लक्ष्मी' नाम से गया से प्रकाशित होने लगी। इसके संस्थापक राय साहब लक्ष्मीनारायण लाल थे, जिन्होंने पत्रिका के लिए प्रेस भी स्थापित किया था। सन् 1921 ई. तक यह पत्रिका प्रकाशित होती रही। इसके सम्पादकों में लाला भगवान दीन भी थे। कुछ दिनों के बाद राय साहब लक्ष्मीनारायण लाल ने एक कृषि विषयक साप्ताहिक भी निकाला, जिसका नाम 'गृहस्थ' था। यह पत्रिका सन् 1940-41 तक निकलती रही। गया से प्रकाशित होने वाली कुछ अन्य पत्रिकायें थीं – 'उपन्यास कुसुमांजलि', 'साहित्य माला', 'विद्या' एवं 'हरिश्चन्द कौमुदी'। ये सभी साहित्यिक पत्रिकाएँ थीं। उन्हीं दिनों देव के राजा ने 'कृष्णा' नाम से एक मासिक पत्रिका निकाली, जिसके सम्पादक पं. रूपनारायण पांडेय थे।

बिहार के एक अन्य शहर भागलपुर का भी पत्रकारिता की दृष्टि से काफ़ी महत्त्व है। सन् 1884 ई. में यहाँ से पं. अम्बिकादत्त व्यास के सम्पादन में 'पीयूष-प्रवाह' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त 'वैष्णव पत्रिका' तथा 'भारत पंचामृत' का भी प्रकाशन यहाँ से हुआ। साथ ही गोकुलानन्द वर्मा के सम्पादन में 'आत्म विद्या', 'प्रेम भक्ति' और 'सत्संग' जैसी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। पं. जीवानन्द शर्मा ने 'श्रीकमला' नामक एक साहित्यिक पत्रिका निकाली। भागलपुर के ही एक निकटवर्त्ती शहर सुल्तानगंज से 'गंगा' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। आचार्य शिवपूजन सहाय और पं. गौरीनाथ झा इसके सम्पादकों में थे। किंतु कुछ दिनों के बाद यह पत्रिका बंद हो गयी। फिर पं. गौरीनाथ झा ने 'हलधर' नामक एक साप्ताहिक निकाला। लेकिन यह पत्रिका भी अधिक दिनों तक निकल नहीं पायी।

उत्तर बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, सारण, चम्पारण आदि ज़िलों से भी अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। मुज़फ़्फ़रपुर से सन् 1908 ई. में 'तिरहुत समाचार' प्रकाशित हुआ। वहीं से अयोध्या प्रसाद खत्री के परिवार के लोगों ने 'सत्य युग' नामक मासिक पत्र निकाला, जिसके सम्पादक पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद थे। डॉ. हेमचन्द्र जोशी भी इससे जुड़े हुए थे। सन् 1930 ई. के अन्त में 'लेखमाला' नामक त्रैमासिक पत्र निकला, जो बाद में 'वैशाली' के नाम से प्रकाशित होने लगा। भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' इसके सम्पादक थे। सन् 1902 ई. में दरभंगा से 'मिथिला मिहिर' का प्रकाशन हुआ, जिसमें हिन्दी और मैथिली को एक साथ शामिल किया गया था। इसके प्रारम्भिक सम्पादक थे – योगानन्द कुमार तथा जनार्दन झा 'जनसीदन'। इसी तरह सन् 1915 ई. में मधुबनी से 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक निकला, जिसके सम्पादक चन्द्रमाराय शर्मा थे। सन् 1938 ई. में यहीं से 'खादी सेवक' नामक पत्र भी निकला, जो मूलतः खादी-आन्दोलन की समस्याओं पर आधारित था। इसके अतिरिक्त गोशाला-आन्दोलन से सम्बन्धित दो मासिक पत्र सन् 1936 ई. में दरभंगा से निकले। उन दिनों दरभंगा गोशाला आन्दोलन का केन्द्र था।

सन् 1888 ई. में सारण ज़िले से पं. अम्बिकादत्त व्यास और भवानीचरण मुखोपाध्याय के संयुक्त सम्पादन में 'सारण सरोज' नामक पत्र प्रकाशित हुआ। वहीं से श्रीमती शारदा देवी ने महिलाओं के लिए 'महिला दर्पण' नामक पत्रिका निकाली। फिर सन् 1937-38 में 'विजय' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। इसी तरह सन् 1884 ई. में चम्पारण से पं. शक्तिनाथ झा के सम्पादन में 'चम्पारण हितकारी' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। बाद में यह साप्ताहिक हो गया। सन् 1888 ई. में एक और पत्र 'धर्म दीपिका' का प्रकाशन पं. चन्द्रशेखर मिश्र के सम्पादन में हुआ। इसी तरह 1890 ई. में पं. भुवनेश्वर मिश्र के सम्पादन में 'चम्पारन-चन्द्रिका' का प्रकाशन हुआ।

स्वतंत्रता-आन्दोलन के साथ हिन्दी पत्रकारिता के विकास का इतिहास जुड़ा हुआ है। यह बिहार के संदर्भ में भी सही है। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावना और स्वातंत्र्य-चेतना के विकास का प्रयास किया गया। सन् 1914 ई. में पटना से 'पाटलिपुत्र' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके प्रथम सम्पादक इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान और बैरिस्टर डा. काशीप्रसाद जायसवाल थे। यह पत्र राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत था। इसी क्रम में पटना से ही पं. जीवानन्द शर्मा ने 'प्रजा बंधु' जगतनारायण लाल ने 'महावीर', नागेश्वर प्रसाद सिंह ने 'तरुण भारत' निकाला। इन सभी पत्रों का उद्देश्य राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना का प्रसार था। इस दृष्टि से सन् 1928 ई. में रामवृक्ष बेनीपुरी और गंगाशरण सिंह के सम्पादन में निकलने वाला पत्र 'युवक' विशेष उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय-भावना के साथ-साथ राजनीतिक जागरूकता पैदा करने की दिशा में भी इस पत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। शायद इसीलिये अंग्रेज़ी शासन को यह स्वीकार्य नहीं हुआ और कुछ दिनों के बाद 'युवक' बन्द हो गया। पटना से ही एक और साप्ताहिक पत्र 'नवशक्ति' का सम्पादन 1930 ई. में देवव्रत शास्त्री ने शुरू किया। यहीं से 'योगी' का प्रकाशन सन् 1933 ई. में प्रारम्भ हुआ। यह पत्र भी साहित्य और राजनीति दोनों को स्थान देता था। राष्ट्रीय आन्दोलन को इस पत्र से काफी सहयोग और समर्थन मिला।

यह एक विशेष उल्लेखनीय बात है कि तीसरे-चौथे दशक के दरम्यान, जब स्वतंत्रता आन्दोलन अपनी तीव्रता पर था, बिहार के विभिन्न नगरों से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा आन्दोलन को समर्थन दिया जा रहा था और उसे गाँव-गाँव तक फैलाने का प्रयत्न हो रहा था। ये पत्रिकाएँ दीर्घजीवी नहीं थीं, फिर भी पराधीनता के विरुद्ध जन-जागरण में इनकी प्रमुख भूमिका थी। सन् 1938 ई. में गया से 'चिंगारी' का प्रकाशन हुआ। यहीं से मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने 'बिहार' और 'त्रिलोचन' नामक पत्र निकाले तथा मुंगेर से 'देशसेवक' और बेगूसराय से 'प्रभाकर' का प्रकाशन हुआ। सन् 1939 ई. में मोतीहारी से रामधारी प्रसाद विशारद के सम्पादन में 'किसान सेवक' निकला। बेतिया से 'मस्ताना', 'अंकुश' और 'चम्पारन' का प्रकाशन हुआ। इसी प्रकार दरभंगा से सन् 1937-38 में धनुषधारी दास एवं यदुनन्दन शर्मा के सम्पादन में 'प्रजा' तथा 'सेवक' नामक पत्र निकले। आरा से सन् 1938 ई. में पारसनाथ त्रिपाठी ने पुनः 'पाटलिपुत्र' निकाला, किंतु एक साल बाद उनके निधन के साथ वह बन्द हो गया।

बेनीपुरी की पत्रकारिता

बेनीपुरी के साहित्यिक जीवन का आरम्भ पत्रकारिता से हुआ। सन् 1917 ई. में उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विशारद की परीक्षा पास की। उस समय कविता की ओर उनका झुकाव था और पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा उनकी कविताएँ

छप जाती थीं। सन् 1920 ई. तक उनपर गाँधीजी का प्रभाव पड़ चुका था और आन्दोलन में भाग लेने के लिए वे मन से तैयार हो गये थे। फलस्वरूप मैट्रिक तक पहुँचने के बाद नियमित शिक्षा के प्रति उनकी दिलचस्पी कम होने लगी थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से जुड़ने के लिए उनके मन में छटपटाहट शुरू हो गयी थी। अतः पढ़ाई छोड़कर गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में हिस्सा लेना शुरू किया। साथ ही अपनी लेखन-रुचि को विकसित करने के लिए पत्रकारिता का मार्ग अपनाया। सन् 1921 ई. में वे 'तरुण भारत' साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक बनाये गये। उनके पत्रकार जीवन का आरम्भ यहीं से होता है। किंतु इससे पहले कुछ दिन बेनीपुरी ने मुज़फ़्फ़रपुर से निकलने वाले साप्ताहिक 'किसान' में काम किया था। मुज़फ़्फ़रपुर के वकील और किसान नेता धरीक्षण सिंह ने 1921 ई. में यह पत्र निकाला था।

उसी समय महात्मा गाँधी के अंग्रेज़ी पत्र 'यंग इंडिया' का हिन्दी रूपान्तर 'तरुण भारत' नाम से पटना के चौधरी टोला मुहल्ले से निकलने लगा। चौधरी टोला के एक पुराने रईस, नागेश्वर प्रसाद सिंह, इस साप्ताहिक के प्रबंधक थे और पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित सम्पादक। इसके पहले दीक्षित जी भूमिहार ब्राह्मण कालेजिएट स्कूल, मुज़फ़्फ़रपुर में हिन्दी के अध्यापक थे। बेनीपुरी जी उसी विद्यालय में पढ़ते थे और दीक्षित जी का अपार स्नेह उन्हें प्राप्त था। जब उन्होंने पटना में 'तरुण भारत' का सम्पादन कार्य शुरू किया तो बेनीपुरी जी को सहकारी सम्पादक रख लिया।

इसके बाद, 1922 ई. में बेनीपुरी 'किसान मित्र' नामक साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक हुए। इन पत्रिकाओं का स्वर राष्ट्रीय चेतना प्रधान था। अतः इनसे जुड़ना एक तरह से स्वतंत्रता आन्दोलन की गतिविधियों से जुड़ना था। इसके बाद सन् 1924 ई. में बेनीपुरी ज़ी ने हास्य-व्यंग्य प्रधान साप्ताहिक 'गोल-माल' में सहकारी सम्पादक का काम किया। अब तक इन सारे साप्ताहिकों में काम करने का उन्हें अनुभव प्राप्त हो गया था। अतः सन् 1926 ई. में उन्होंने 'बालक' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन शुरू किया। आचार्य रामलोचन शरण के हिमालय प्रेस से यह पत्रिका निकलती थी। यह बच्चों की पत्रिका थी और इसमें रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्रियों को विशेष स्थान मिलता था। इसके सम्पादन से बेनीपुरी जी को अपार लोकप्रियता मिली। साथ ही इस पत्रिका के द्वारा उन्होंने कई पीढ़ियाँ तैयार की। 'बालक' के सम्पादक के रूप में बेनीपुरी ने पुस्तक भंडार में सन् 1926 से 1928 तक कोई दो वर्षों तक काम किया। उनके प्रयत्न से 'बालक' को अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसी दौर में बेनीपुरी ने अनेक बाल-पुस्तकों की रचना की - जैसे 'बगुला भगत', 'हीरामन तोता', 'सियार पाँड़े', 'बिलाई मौसी' आदि।

इस बीच स्वतंत्रता-आन्दोलन अपने पूरे उभार पर पहुँच गया। महात्मा गाँधी ने देश के युवकों का आह्वान किया था और स्कूलों एवं कॉलेजों से विद्यार्थियों की जमात निकलकर आन्दोलन में हिस्सा लेने लगी थी। युवकों और नौजवानों को प्रेरित करने के लिए सन् 1929 ई. में बेनीपुरी ने 'युवक' नामक मासिक-पत्र निकाला। अपने समाजवादी साथियों – गंगाशरण सिंह एवं रामनन्दन मिश्र – के साथ मिलकर बेनीपुरी ने पटना में 'युवक आश्रम' की स्थापना की। उनके प्रयास से 'युवक' का प्रत्येक अंक विचारोत्तेजक और महत्त्वपूर्ण होता था। पत्रकार के रूप में बेनीपुरी की महत्ता को रेखांकित करते हुए कथाकार राधाकृष्ण ने लिखा है – मैं स्वयं बाल था जब वह 'बालक' निकालने लगा था। जब उसने 'युवक' निकाला तो मैं भी नवयुवक हो चला था। उसने मेरे निराकार मन को आकार दिया था और मेरे अन्तःकरण को अपनी इच्छानुसार सिरजा था। मैंने उसके 'युवक' में लिखने का प्रयास किया था और असफल हुआ था, क्योंकि मुझे लिखना आता ही नहीं था। फिर भी उसने कृपा की थी और मेरा एक लेख 'युवक' में प्रकाशित किया था। सन् '30 में मैं जगत नारायण लाल के पत्र 'महावीर' का सहकारी सम्पादक होकर पटना गया था। वे असहयोग आन्दोलन के दिन थे। उस समय मैंने बेनीपुरी के ओजस्वी भाषण सुने थे और आश्चर्य से अवाक् हो गया था। उस समय मेरी सबसे बड़ी कल्पना थी कि मैं भी बेनीपुरी की भाँति हो सकूँ। अपने अन्तःकरण से मैं भगवान से प्रार्थनाएँ किया करता था कि हे भगवान, मुझे भी बेनीपुरी की तरह लेखनी और वाणी देना। उस समय बेनीपुरी जी से मेरी जान-पहचान नहीं थी, परन्तु परोक्ष रूप से मेरे अन्तःकरण को गढ़ने में बेनीपुरी का भी हाथ है। फिर तो असहयोग और गिरफ़्तारियों की आँधी ऐसी आयी कि कोई कहाँ गया, कोई कहाँ गया। उसके बाद सुना कि बेनीपुरी बिहार में नहीं रहते। वे खंडवा चले गये हैं और वहीं 'कर्मवीर' में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के साथ रहते हैं।" (नई धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त 1969)

वस्तुतः सन् 1930 ई. के सत्याग्रह आन्दोलन में गिरफ़्तार होकर बेनीपुरी जेल चले गये। उनकी अनुपस्थिति में 'युवक' का काम-काज शिथिल पड़ गया। फिर ब्रिटिश सरकार की कोप-दृष्टि भी 'युवक' पर थी। सरकारी दमन के कारण इसका प्रकाशन बन्द हो गया। किंतु जेल में भी बेनीपुरी के भीतर का पत्रकार चुप नहीं रहा। अपने राजनीतिक और साहित्यिक सहयोगियों के साथ मिलकर जेल में ही 'कैदी' नामक एक हस्तलिखित पत्र निकाला। इस पत्र का उल्लेख डा. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में किया है। जेल से आने के बाद सन् 1933 ई. में बेनीपुरी ने 'लोक संग्रह' नामक पत्र का सम्पादन शुरू किया। यह पत्र प्रसिद्ध किसान नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित था, जिसका संचालन यमुनाकार्यी करते थे। सन्

1934 ई. के प्रलयंकारी भूकम्प में 'लोक संग्रह' कार्यालय ध्वस्त हो गया और पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया। इसी समय पं. माखनलाल चतुर्वेदी के आग्रह पर बेनीपुरी बिहार छोड़कर खंडवा (मध्य प्रदेश) चले गये और 'कर्मवीर' के सम्पादन कार्य से जुड़ गये। डॉ. प्रभाकर माचवे ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है – "रामवृक्ष बेनीपुरी सन् 1934 में 'कर्मवीर' साप्ताहिक के सह-सम्पादक होकर बिहार से खंडवा आये थे। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के आग्रह से वे वहाँ पधारे थे। मेरी पहली हिन्दी कविता और कहानी 'कर्मवीर' में ही छपी, बेनीपुरी जी ने उसमें संशोधन किये थे। बाद में वे प्रति सप्ताह मेरी छोटी कहानियाँ और गद्य-गीत जैसे टुकड़े बराबर छापते रहते थे।" (नई धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त, 1969 ई., पृष्ठ 132)

'कर्मवीर' में कुछ दिन काम करने के बाद बेनीपुरी खंडवा से पटना लौट आये। माखनलाल जी के साथ काम करने का उनका अनुभव सुखद था, फिर भी राजनीतिक गतिविधियों के लिए वे बिहार को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाना चाहते थे। इसलिए पटना आ गये। यहाँ आकर बेनीपुरी 'योगी' साप्ताहिक के सम्पादन-कार्य से संलग्न हो गये। उनके कुशल सम्पादन में 'योगी' की लोकप्रियता काफ़ी बढ़ गयी। किंतु अपने प्रखर राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए बेनीपुरी 'योगी' को अनुकूल नहीं मानते थे। इसलिए कुछ दिनों के बाद अलग होकर सन् 1937 ई. में समाजवादी विचारधारा का प्रमुख पत्र 'जनता' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया। इस समय तक कांग्रेस से अलग समाजवादी आन्दोलन अपना व्यापक स्वरूप ग्रहण कर चुका था। आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, जे. बी. कृपलानी, डा. राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्द्धन, यूसुफ मेहर अली आदि अनेक राष्ट्रीय नेता समाजवादी विचारधारा के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। बिहार में भी समाजवादियों का संगठन काफ़ी मजबूत था। जे. पी. का प्रमुख कार्य-क्षेत्र बिहार ही था। उनके अतिरिक्त पं. रामनन्दन मिश्र, सूरज नारायण सिंह, कर्पूरी ठाकुर, रामवृक्ष बेनीपुरी, बसावन सिंह आदि बिहार के प्रमुख समाजवादी थे, जिनकी स्वतंत्रता आन्दोलन में उल्लेखनीय भूमिका थी। बिहार में समाजवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए किसी पत्र की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बेनीपुरी ने साप्ताहिक 'जनता' का श्रीगणेश किया। उनके सम्पादन में यह पत्र प्रगतिशील विचारों का संवाहक बन गया। पटना में 'जनता' का कार्यालय समाजवादी और प्रगतिशील कार्यकर्त्ताओं और नये लेखकों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

बेनीपुरी ने एक समर्पित और निर्भीक सम्पादक के रूप में 'जनता' के 'किसान अंक' और 'शहीद अंक' जिस तरह निकाले, उसकी सर्वत्र धूम मच गयी। यही कारण

था कि ब्रिटिश सरकार की कोप-दृष्टि उन पर पड़ी और वे गिरफ़्तार कर हज़ारीबाग जेल भेज दिये गये। कहते हैं, इस बार जेल में उन्होंने 'तूफ़ान' नामक एक हस्तलिखित पत्र का सम्पादन किया। एक पत्रकार के रूप में बेनीपुरी ने 'जनता' साप्ताहिक के द्वारा राजनीति और साहित्य दोनों क्षेत्रों में अपनी विशेष छाप छोड़ी। राजनीति के क्षेत्र में यह पत्र जहाँ प्रगतिशील और समाजवादी विचारों का प्रवक्ता था, वहीं साहित्य के क्षेत्र में नयी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित और प्रतिष्ठित भी कर रहा था। राजनीति और साहित्य में बिहार से कर्पूरी ठाकुर और फणीश्वर नाथ रेणु – इन दो शिखर-व्यक्तित्वों के निर्माण में 'जनता' की उल्लेखनीय भूमिका रही। कर्पूरी जी के विचारों, वक्तव्यों और समाचारों को 'जनता' में प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता था और उन्हें एक भावी नेता के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। दूसरी तरफ़ फणीश्वर नाथ रेणु के लेख और रिपोर्ताज 'जनता' में ही प्रकाशित हो रहे थे और बड़े लेखक की सारी सम्भावनाओं के साथ उन्हें पेश किया जा रहा था। 'डायन कोसी' शीर्षक उनका रिपोर्ताज पहली बार 'जनता' में ही प्रकाशित हुआ था और हिन्दी पाठकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था। इसके बाद निरन्तर उनकी रचनाएँ 'जनता' में छपती रहीं। एक समाजवादी राजनीतिक कार्यकर्त्ता को साहित्यकार में रूपान्तरित करने का श्रेय 'जनता' को जाता है और इस तरह फणीश्वर नाथ मंडल हिन्दी साहित्य के फणीश्वर नाथ रेणु बन गये।

बिहार के साहित्यिक-राजनीतिक परिदृश्य में 'जनता' की चर्चा करते हुए केदार नाथ मिश्र प्रभात ने लिखा है – "**जनता** की दो विशेषताएँ थीं। नेपाल की सामाजिक व्यवस्था और राणाशाही के खिलाफ़ खुलकर विद्रोह फैलाना' उसकी उग्र राजनीति का परिचायक था। इसी प्रकार साहित्यिक स्तम्भ के अन्तर्गत विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ छापकर वातावरण को आन्दोलित करते रहना उसका स्वभाव था। बेनीपुरी भाई कवि दिनकर में विशेष रुचि लेने लगे थे। साहित्यिक स्तम्भ में प्रायः उनकी भी चर्चा करते और यह आन्दोलन चलाया कि कवि दिनकर का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाना चाहिए।" (नयी धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष 20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त 1969, पृष्ठ 62) जहाँ तक नेपाल की राणाशाही के विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रश्न है, समाजवादी नेताओं के कार्यक्रम में यह मुद्दा शामिल था। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के साथ-साथ नेपाल में भी लोकतंत्र की स्थापना का लक्ष्य समाजवादियों के सम्मुख था। इसलिए 'जनता' में प्रकाशित लेखों और टिप्पणियों में नेपाल के मुक्ति-संघर्ष की चर्चा हुआ करती थी। बाद में राणाशाही के खिलाफ़ जब निर्णायक लड़ाई लड़ी गयी, उसमें जे. पी., लोहिया से लेकर दूसरे समाजवादी नेताओं और रेणु तथा बेनीपुरी-जैसे लेखकों ने, वी. पी. कोइराला के साथ मिलकर, महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

सन् 1946 में बेनीपुरी ने पुस्तक भंडार, पटना से प्रकाशित 'हिमालय' मासिक का सम्पादन भी आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ मिलकर किया। 'हिमालय' के सम्बन्ध में स्वयं बेनीपुरी ने अपने 'पत्रकार जीवन के पैंतीस वर्ष' शीर्षक निबंध में लिखा है "हिमालय हिन्दी मासिक साहित्य में अनोखा प्रयोग था। सौ पृष्ठ, बढ़िया कागज़, सुन्दर छपाई, पक्की जिल्द, एक-एक अंक एक स्वतंत्र पुस्तक-सा लगता था। फिर भीतर जो सामग्री हम प्रस्तुत करते थे, वह भी अनूठी होती थी। पहला अंक हमने तीन हजार छपवाया था, तुरन्त ही उसका दूसरा संस्करण करना पड़ा। हिन्दी के मासिक साहित्य के लिए यह एक अभूतपूर्व घटना थी।"

कुछ समय के लिए आचार्य नरेन्द्र देव के पत्र 'जनवाणी' में भी बेनीपुरी ने काम किया। किंतु बाद में साप्ताहिक 'जनता' का दैनिक के रूप में पुनः प्रकाशन शुरू हुआ और बेनीपुरी ने उसका सम्पादन कार्य सँभाला। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह बन्द हो गया। फिर सन् 1950 ई. में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के सुपुत्र उदयराज सिंह ने अशोक प्रेस, पटना से 'नई धारा' का प्रकाशन प्रारम्भ किया और बेनीपुरी जी उसके प्रथम सम्पादक बनाये गये। उनके सम्पादन में 'नई धारा' ने हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में कीर्तिमान कायम किया।

पत्रकार नर्मदा प्रसाद खरे ने लिखा है -- 'नई धारा' का जन्म सन् 1950 की रामनवमी को हुआ। इस शुभ तिथि को बेनीपुरी जी अपने जीवन की अविस्मरणीय तिथि मानते थे। उन्हें 'नई धारा' पर 'हिमालय' से कोई कम गर्व नहीं था। वे ही क्यों सारा हिन्दी संसार 'नई धारा' में अवगाहन करने के लिए उत्कंठित रहता। वे वर्षों 'नई धारा' का बड़े ठाट के साथ एक लगनशील सम्पादक के रूप में सम्पादन करते रहे, उसे नया जीवन और नये मोड़ देते रहे।" (नई धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष-20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त, 1969, पृष्ठ-118)

बेनीपुरी जी ने 'नई धारा' निकालने की तैयारी में रचनात्मक सहयोग के लिए अनेक लेखकों और पत्रकारों से सम्पर्क किया। उनके एक पत्र का जवाब देते हुए पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने 12 फरवरी, 1950 के पत्र में लिखा था -- "आप 'नई धारा' प्रारम्भ कर रहे हैं, यह पढ़कर बहुत हर्ष हुआ और कुछ चिन्ता भी। हर्ष तो स्वाभाविक ही है पर चिन्ता का कारण यह है कि अब पत्र निकालना या तो पार्टियों का काम रह गया है अथवा पूँजीपतियों का। यदि आप अपनी पार्टी से पत्रिका निकलवाते तो घाटे की आशंका से बच जाते। मुझे डर इस बात का है कि प्रथम वर्ष में ही आपको 3/4 हजार का घाटा कहीं न सहना पड़े। और यह तो तब जबकि आप वेतन कुछ भी न लें। आज की परिस्थिति यही है।" (नई धारा, पत्र विशेषांक, वर्ष-42, अंक 11-12, फरवरी-मार्च 1992, पृष्ठ-53) वस्तुतः 'नई धारा' के प्रकाशन का व्यय-भार श्री उदयराज सिंह को वहन करना था, जो इसके

मुद्रक और प्रकाशक थे। सिर्फ सम्पादन का दायित्व बेनीपुरी जी के ऊपर था। फिर भी पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति का वास्तविक संकेत अपने पत्र में दिया था। 'नई धारा' का जब पहला अंक प्रकाशित हुआ तो अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए चतुर्वेदी जी ने दिनांक 9.4.50 को लिखा था – " 'नई धारा' आपने खूब प्रवाहित की। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए। सम्पादकीय से पूर्णतया सहमत हूँ। यह और भी संतोष की बात है कि आप 'नई धारा' को वादों के कीचड़ और विवादों के दलदल से अलग रखेंगे। विस्तृत सम्मति तो फिर भेजूँगा, इस समय यही लिखना चाहता हूँ कि 'नई धारा' सर्वथा निर्मल है और उसमें आपकी प्रगतिशील ओजस्विता प्रतिबिम्बित है।" (नयी धारा, पत्र विशेषांक, वर्ष-42, अंक 11-12, फरवरी-मार्च 1992, पृष्ठ-55)

'नई धारा' का सम्पादन-कार्य सम्भालने के बाद बेनीपुरी जी ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को सहयोग के लिए पत्र लिखा था और विशेष रूप से उनकी डायरी की माँग की थी। द्विवेदी जी तब शांतिनिकेतन में थे। अपने 22 फरवरी, 1950 के पत्र में उन्होंने उत्तर देते हुए लिखा था – "आप 'नई धारा' निकालने जा रहे हैं, यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है। जब आप सम्पादन करेंगे तो निस्संदेह उसका मान बहुत ऊँचा होगा। मेरा सहयोग अवश्य मिलेगा। आप पत्र निकालें और मैं उसमें सहयोग न दूँ – यह हो नहीं सकता। लेकिन यह किसने बताया कि मैं डायरी लिखा करता हूँ ? डायरी मैं लिखता नहीं हूँ, यही नहीं, मेरा विचार है कि डायरी लिखना हिन्दी-भाषी सभी प्रांतों के मनुष्यों के लिए अस्वाभाविक प्रयास है। हिन्दी-भाषी प्रांतों में लोग कुछ सरस और नर्मपटु होते हैं। डायरी और तरह के लोग लिखा करते हैं। परन्तु मैं चाहूँ तो डायरीनुमा गद्य शायद लिख लूँ। एक बार प्रयत्न करके देखता हूँ, यदि बन गया तो आपके अवलोकनार्थ भेजूँगा, नहीं तो और कुछ।" (नई धारा, पत्र विशेषांक, वर्ष-42 अंक 11-12, फरवरी मार्च 1992, पृष्ठ-120)

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि जिस "डायरी-नुमा गद्य लिखने का प्रयत्न" करने की बात द्विवेदी जी ने कही थी, वह डायरी उन्होंने 'नई धारा' में भेजी। उस समय शांतिनिकेतन से वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आ गये थे। बेनीपुरी जी ने भी इस बीच यूरोप के कई देशों की यात्रा की थी। अपने 22.10.51 के पत्र में द्विवेदी जी ने लिखा – "प्रिय भाई बेनीपुरी जी, हवा की पीठ पर बैठकर देश-विदेश घूम आये और मधुर क्षणों में धरती की पीठ पर ठिठके हुए मित्रों की याद करते रहे, इस द्विमुख कर्त्तव्य के लिए बधाई दूँ या न दूँ – यही सोच रहा हूँ। मछली को सफलतापूर्वक तैरने के लिए बधाई देनी चाहिए या नहीं? शायद नहीं, क्योंकि उसे विधाता ने यह 'सहज' गुण दिया है – यह उसका स्वभाव है। और जो आदमी जन्म भर तूफ़ान पर सवारी करता रहा और फिर भी जिसने धरती को क्षण भर

के लिए नहीं भुलाया, उसे ही क्यों बधाई दी जाय? संसार की सबसे बड़ी समस्या यही है कि लोग आराम करना भूल गये हैं। कोई रुकना नहीं चाहता। हँसिया और हथौड़ा भी, हल और चक्का भी, चरखा और करघा भी – सब एक ही बात सिखाते हैं – रुको नहीं, झुको नहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।" (नई धारा, पत्र विशेषांक, वर्ष-42, अंक 11-12, फरवरी-मार्च 1992, पृष्ठ-121) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस पत्र से स्पष्ट है कि बेनीपुरी जी ने उन्हें 'नई धारा' के लिए डायरीनुमा गद्य लिखने के लिए आग्रहपूर्वक प्रेरित किया।

वस्तुतः बेनीपुरी की राजनीतिक प्रतिबद्धता ने उनके पत्रकार को वैचारिक प्रखरता दी थी। हिम्मत के साथ सच कहने में उन्हें कभी कोई हिचक नहीं हुई। उनकी स्पष्टवादिता और निर्भीकता हिन्दी-जगत में विख्यात थी। 'नई धारा' में एक टिप्पणी लिखकर उन्होंने तहलका मचा दिया था। उन्होंने लिखा था कि हिन्दी के तीन दुश्मन हैं – मौलाना आज़ाद, डाक्टर रघुवीर और पं. बनारसी दास चतुर्वेदी। मौलाना आज़ाद का कसूर यह था कि हिन्दी के लिए वे कुछ भी करने को तैयार नहीं थे। डाक्टर रघुवीर का अपराध था कि हिन्दी को वे कुरुप और कठिन बना रहे थे और बनारसी दास चतुर्वेदी इसलिए दोषी थे कि वे जनपदीय भाषाओं के आन्दोलन को बढ़ावा दे रहे थे। हिन्दी के प्रति बेनीपुरी की निष्ठा का अन्दाज़ इस बात से लगाया जा सकता है। दिनकर जी ने एक जगह लिखा है – "जब संविधान का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ, बेनीपुरी जी उसे देखकर घोर निराशा में डूब गये और बोले, दिनकर हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं हुई। राष्ट्रभाषा, तो संस्कृत बनायी जा रही है।" (नई धारा, बेनीपुरी स्मृति अंक, वर्ष-20, अंक 1-5, अप्रैल-अगस्त 1969, पृष्ठ-191)

बेनीपुरी हिन्दी के सरल और सुबोध रूप के पक्षधर थे। हिन्दी में तत्सम शब्दों की भरमार से जो दुरूहता आ रही थी, वह उन्हें पसंद नहीं थी। इसलिए बोलचाल की भाषा को उन्होंने साहित्यिक रूप दिया तथा एक पत्रकार के नाते हिन्दी भाषा को कामकाजी भाषा का नया संस्कार देने में अपनी अहम भूमिका निभायी। सन् 1921-22 में 'किसान' के सम्पादन से लेकर सन् 1950 में, 'नई धारा' के सम्पादन तक बेनीपुरी ने अपने पत्रकार जीवन की अनेक मंज़िलें तय कीं। इस बीच उन्होंने 'तरुण भारत', 'गोलमाल', 'बालक', 'युवक', 'कैदी', 'लोक संग्रह', 'कर्मवीर', 'योगी', 'जनता', 'हिमालय', 'जनवाणी', 'चुन्नू-मुन्नू' और 'नई धारा' का सम्पादन किया और हिन्दी पत्रकारिता को एक गरिमापूर्ण ऊँचाई दी।

5
शैलीकार बेनीपुरी

रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी के अद्वितीय शैलीकार माने जाते हैं। उन्होंने गद्य-रचना की एक नवीन शैली विकसित की थी। हिन्दी में 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' का अनुवाद है। पश्चिमी विचारकों ने शैली को लेखक की त्वचा कहा है। इससे लेखक की पहचान बनती है। हर महत्त्वपूर्ण लेखक अपनी विशिष्ट शैली के कारण पहचाना जाता है। एक ही विषय-वस्तु पर अनेक लोग लिखते हैं, पर अभिव्यक्ति की भंगिमा सबकी अलग-अलग होती है। भाषा और अभिव्यक्ति की यह विशिष्ट भंगिमा ही शैली है।

भारतीय साहित्य-शास्त्र में शैली का समानार्थी शब्द 'रीति' मिलता है। आचार्य वामन ने 'विशिष्ट पद-रचना' को रीति कहा है। इस प्रकार 'रीति' लेखन की एक विशिष्ट पद्धति है। इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए आचार्य वामन ने इसे काव्य की आत्मा कहा है। ये रीतियाँ तीन प्रकार की बतायी गयी हैं – वेदर्भी, गौड़ीय और पांचाली। इनमें विभिन्न काव्य-गुणों की कल्पना की गयी है। जैसे – वैदर्भी रीति में ओज और प्रसाद, गौड़ी रीति में ओज और कांति तथा पांचाली रीति में मधुरता एवं सुकुमारता के गुण पाये जाते हैं। ये गुण विशिष्ट पद-रचना के कारण भाषा में आते हैं। इस तरह आचार्यों ने 'रीति' को अच्छे लेखन का गुण या धर्म माना है।

पश्चिम के विचारकों ने भी 'शैली' को लेखक का गुण माना है। प्लेटो का कहना है कि "जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है।" इसी तरह जॉर्ज बर्नाड शॉ का मानना है कि "प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है।" फ्रांसीसी उपन्यासकार स्तेन्दल ने बालजॉक को लिखे एक पत्र में शैली के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात कही है – "शैली न तो बहुत स्पष्ट और न बहुत सरल होती है।" (स्टाइल कैन नॉट बी टू क्लियर, टू सिम्पुल) फ्रांस के ही एक और उपन्यासकार फ्लॉवेयर अपने लिए एक ऐसी सुन्दर शैली की कल्पना करते हैं, जिसमें काव्य की लयात्मकता और विज्ञान की समासता अथवा संक्षिप्तता एक साथ हो (ए बिउटीफुल स्टाइल . . . . . ऐज रिदिमकल ऐज वर्स एण्ड ऐज प्रेसाइज ऐज साइंस)। फ्रांस के एक दूसरे उपन्यासकार एमिल जोला

मानते हैं कि तार्किकता और स्पष्टता के द्वारा उदात्त शैली निर्मित होती है। (दि ग्रैंड स्टाइल इज एचिव्ड थ्रू लॉजिक एण्ड क्लियारिटी : नॉवेलिस्ट ऑन दि नोबेल, मिरियम एलॉट, रुतलेज एण्ड केगान पॉल, लंदन)। इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विचारकों ने साहित्य-लेखन में शैली के महत्त्व को स्वीकार किया है।

अमरीकी विचारक रेन वेलेक और आस्टिन वारेन ने साहित्य-सिद्धांत (थियोरी ऑफ लिटरेचर) के अन्तर्गत शैली की चर्चा करते हुए स्वीकार किया है कि शैली किसी कृति या कृतियों के समूह का अपना भाषा-निकाय है। उनका यह भी मानना है कि शैली-विश्लेषण में पहला क़दम होगा ध्वनियों की आवृत्ति, शब्द-विन्यास के प्रतिवर्तन, उप वाक्यों के पूर्वापर क्रम के विन्यास आदि की दृष्टि से लीक छोड़ने के उदाहरणों पर नज़र रखना, जिनका कुछ सौंदर्य व शास्त्रीय महत्त्व होता है। हिन्दी साहित्य कोश में शैली की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है – "शैली अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीक़ों का नाम है, जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।" (हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृष्ठ-837) कुल मिलाकर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों का यही मत है कि 'शैली' भाषा और अभिव्यक्ति की ही एक विशेष पद्धति है। इसलिए किसी रचनाकार के अनुभव-संसार में प्रवेश करने के लिए उसकी शैली का व्यवस्थित विवेचन आवश्यक है।

हिन्दी में बेनीपुरी अपनी विशिष्ट शैली के लिए विख्यात हैं। उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नये साँचे में ढाला था। पत्रकार के रूप में उन्होंने अपना जीवन आरम्भ किया था और राजनीति एवं साहित्य को कार्य-क्षेत्र बनाया था। इसलिए उनकी भाषा में पत्रकारिता की प्रवहमानता, राजनीति की प्रखरता और साहित्य की रसमयता की त्रिवेणी है। उनके कार्य-व्यापार और जीवन-चर्या का प्रभाव उनकी भाषा पर भी था। इसलिए उनकी भाषा में जीवंतता और शैली में सम्मोहन है।

बेनीपुरी की शैली को समास-शैली का नाम दिया जा सकता है। कम शब्दों में अधिक कहने की शैली। गागर में सागर भरने की कला इस शैली की विशेषता है। बिहारी के दोहों की तरह – "देखन में छोटो लगै, घाव करै गम्भीर"। अपनी भाषा-शैली के सम्बन्ध में बेनीपुरी का कहना था – "उनके कॉमा फुलस्टॉप भी बोलते हैं।" यह सच है कि बेनीपुरी की भाषा में संकेत-चिह्नों का भरपूर प्रयोग हुआ है और उनका ख़ास महत्त्व है। उनके वाक्य प्रायः छोटे और चुस्त होते हैं। क्रिया-पद के बिना ही वाक्य में पूर्ण-विराम आ जाता है। कभी-कभी एक पद ही पूरे वाक्य का काम करता है। उनके संस्मरण, शब्द-चित्र और रिपोर्ताज इसके उदाहरण हैं। 'माटी की मूरतें' में 'मंगर' का परिचय देते हुए वे लिखते हैं –

> "हट्टा-कट्टा शरीर। कमर में भगवा। कंधे पर हल। हाथ में पैना। आगे-आगे बैल का जोड़ा अपनी आवाज़ के हहास से ही बैलों को भगाता, मेरे खेत

की ओर सुबह-सुबह जाता - जबसे मुझे होश है, मैंने मंगर को इसी रूप में देखा है, मुझे ऐसा लगता है।"

बेनीपुरी का यह शब्द-चित्र उनकी शैली का सटीक उदाहरण है। कैमरे का लेंस जैसे किसी दृश्य-खंड को अपने भीतर उतार लेता है, उसी तरह बेनीपुरी की भाषा-शैली भाव-खंड को यथावत् प्रस्तुत कर देती है।

बेनीपुरी ने अपनी भाषा के भीतर विभिन्न संकेत-चिह्नों — विराम, अर्द्ध-विराम, पूर्ण-विराम, योजक, बिन्दु, विस्मयादि बोधक, प्रश्नवाचक आदि का भरपूर प्रयोग किया है। इससे उनकी शैली में एक ख़ास तरह की लोच और भंगिमा आ गयी है। 'गेहूँ और गुलाब' का एक शब्द-चित्र है – 'छब्बीस साल बाद'। लेखक छब्बीस साल पूर्व की एक नारी-मूर्त्ति को स्मृतियों के सहारे अंकित करता है –

"छोटा-सा ललाट, चाँद के टुकड़े-सा। ऊपर सजल श्यामल मेघ-से बालों के लट, नीचे काम के कमान-सी पतली, लचीली, नुकीली भौंहें। आँखों में खुमार, गालों पर गुलाब। सुन्दर पतली नाक - जब वह पतले अधरों को खोल, दानेदार दाँतों को ज़रा-सा चमकाकर बोलती, मालूम होता, नाक उसमें सुरीलापन भर रही। स्वस्थ अर्द्ध-स्फुटित यौवन। कैसी मोहक थी वह, उसकी काया, उसकी बातें, उसकी चाल।"

इस तरह हम कह सकते हैं कि बेनीपुरी की शैली की दूसरी विशेषता है — चित्रात्मकता। चित्रों में जिस तरह रंग और रेखाएँ बोलती हैं, बेनीपुरी के शब्द-चित्र भी वैसे ही बोलते हैं।

बेनीपुरी 'माटी की मूरतें' गढ़ने वाले कलाकार हैं, ग्रामीण जीवन के चितेरे। इसलिए उनकी भाषा में गँवई गंध, राग, रस, रंग सब एक साथ विद्यमान हैं। उन्होंने लोकोक्तियों, मुहावरों और लोकगीतों का सटीक प्रयोग किया है। इससे ग्रामीण परिवेश और लोक-संस्कृति का स्वाभाविक स्वरूप उभर कर हमारे सामने आता है। 'गेहूँ और गुलाब' में बेनीपुरी ने 'रोपनी' का वर्णन किया है। वर्षा-ऋतु में धान की रोपनी हो रही है। औरतें झुंड बनाकर धान रोप रही हैं और साथ-साथ चुहल करती हुई गा रही हैं –

नइहरवा मैं ठंडी बयार
ससुरवा मैं ना जइहों।
ससुरा में मिलेला जउआ की रोटी, महुआ की रोटी
नइहरा में पूड़ी हजार।
ससुरवा मैं ना जइहों।

बेनीपुरी ने लोक-जीवन के मर्म को लोक-गीतों के द्वारा उद्घाटित किया है।

इससे लेखन में सरसता आयी है। यह सरसता और गीतिमयता उनकी शैली की एक और विशेषता है।

शैलीकार के रूप में बेनीपुरी की सजगता और सचेष्टता का यह अर्थ नहीं कि वे विषय-वस्तु के प्रति उदासीन हैं या उनके लेखन में विषय-वस्तु की उपेक्षा हुई है। वास्तविकता तो यह है कि शैली और विषय-वस्तु की एकाकारिता बेनीपुरी के लेखन की विशेषता है। फ्लॉवेयर ने भी कहा था कि उसके लिए शिल्प और विषय-वस्तु दोनों एक हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। भाव या विचार जितने गहरे होते हैं, वाक्य भी उन्हीं के अनुरूप बनते हैं। बेनीपुरी के सम्बन्ध में भी यह बात सच है। उनकी वस्तु और शैली एक दूसरे के अनुरूप हैं। बल्कि अपनी अनुभूत विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने सटीक और पारदर्शी भाषा-शैली तैयार की है। उनकी शैली में ऐसी पारदर्शिता है कि प्रतिपाद्य वस्तु झिलमिल पानी के बहाव में तैरती मछली की आँख की तरह साफ़-साफ़ दिखायी पड़ती है।

इसमें दो राय नहीं कि बेनीपुरी का सम्पूर्ण साहित्य, चाहे वह उपन्यास हो या कहानियाँ, शब्द-चित्र हो या रिपोर्ताज, जीवनी हो या निबंध उनके शैलीकार रूप को प्रमाणित एवं प्रतिष्ठित करता है। दिनकर जी ने भी लिखा है – "बेनीपुरी जी ने सीधी, सरल और चुलबुली भाषा लिखने में सिद्धि प्राप्त की थी। हिन्दी में वे अपने ढंग के अकेले शैलीकार थे।" सही अर्थ में वे कलम के जादूगर थे। उनकी चंचल, खंजन-सी फुदकती भाषा-शैली से प्रभावित होकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था – "बेनीपुरी जी, आपके हाथ में लेखनी है या जादू की छड़ी।" यह कथन एक श्रेष्ठ शैलीकार के रूप में बेनीपुरी के महत्त्व को रेखांकित करता है।

बेनीपुरी के जीवन के प्रमुख घटना-क्रम

जन्म तिथि : अज्ञात, सम्भवतः पौष संवत् 1958, जनवरी 1902 ई.

जन्म स्थान : बेनीपुर, थाना कटरा, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार।

परिवार : पिता श्री फुलवन्त सिंह, पितामह श्री यदुनन्दन सिंह। साधारण किसान। बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास।

शिक्षा : अक्षरारम्भ बेनीपुर में। प्राथमिक शिक्षा बंशीपचरा, ननिहाल में। फिर भिन्न-भिन्न स्कूलों में अध्ययन करते हुए जब मैट्रिक में ही पहुँचे थे, असहयोग आन्दोलन के कारण 1920 में नियमित शिक्षा का परित्याग।

साहित्य प्रेम : तुलसीकृत रामचरितमानस के पठन-पाठन से साहित्य की ओर रुचि। कविता की ओर प्रारम्भिक प्रवृत्ति। प्राचीन काव्यों का स्वतः अध्ययन। 15 वर्ष की उम्र में ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के विशारद। इसके पहले से ही पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ।

पत्रकारिता :

1921 — 'तरुण भारत' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।

1922 — 'किसान मित्र' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।

1924 — 'गोलमाल' (साप्ताहिक) के सहकारी सम्पादक।

1926 — 'बालक' (मासिक) के सम्पादक।

1929 — 'युवक' (मासिक) के सम्पादक और संचालक।

1930 — 'कैदी' (हस्तलिखित) का सम्पादन, हज़ारीबाग जेल में।

1934 — 'लोक संग्रह' (मुज़फ़्फ़रपुर) और 'कर्मवीर' (खंडवा) के कार्यकारी सम्पादक।

1935 — 'योगी' (साप्ताहिक) के सम्पादक।

1937 — 'जनता' (साप्ताहिक) के सम्पादक।

1942 — 'तूफ़ान' (हस्तलिखित), हज़ारीबाग जेल में सम्पादन।

1946 — 'हिमालय' (मासिक) के सम्पादक, आचार्य शिवपूजन सहाय जी के साथ।

1946 — 'जनता' (साप्ताहिक) के पुनः सम्पादक।

1948 — 'जनवाणी' (मासिक), काशी के सम्पादक-मंडल में आचार्य नरेन्द्र देव जी के साथ।

1950 — 'नई धारा' और 'चुन्नू-मुन्नू' के प्रधान सम्पादक (दोनों ही मासिक)

1951 — 'जनता' (दैनिक) के प्रधान सम्पादक।

कृतियाँ : 1925 — (1) बगुला भगत (2) सियार पाँड़े (3) बिहारी सतसई की टीका (4) प्रेम (अनुवाद) (5) कविता-कुसुम (संग्रह)।

1927-28— (1) विद्यापति की पदावली (सटिप्पण) (2) बिलाई मौसी (3) हिरामन तोता (4) आविष्कार और आविष्कारक (5) शिवाजी (6) गुरु गोविन्द सिंह (7) विद्यापति (8) लंगट सिंह।

1930-32— (1) पतितों के देश में (2) फुटकल कहानियाँ, जो "चिता के फूल" में संग्रहीत हुईं।

1935-36— (1) साहस के पुतले (2) झोपड़ी से महल (3) रंग-विरंग (4) बहादुरी की बातें (5) क्या और क्यों (ये दोनों पुस्तकें अप्रकाशित) (6) दीदी (उपन्यास : चार फार्म छपी, मूल प्रति अप्राप्य)।

1937-39— (1) लाल तारा (2) लाल चीन (3) जान हथेली पर (4) फलों का गुच्छा (5) पद-चिह्न (6) सतरंगा धनुष (7) झोपड़ी का रुदन (कहानी संग्रह)।

1940 — (1) कैदी की पत्नी (2) लाल रूस (3) सात दिन (उपन्यास : अप्रकाशित) (4) जोश (अप्रकाशित)।

1941-45— (1) माटी की मूरतें (2) अम्बपाली (3) रोजा लुक्जेमबुर्ग (4) रवीन्द्र-भारती (अप्रकाशित) (5) इक़बाल (अप्रकाशित) (6) रूस की क्रांति (7) टुलिप्स (अप्रकाशित)।

1947 — (1) जयप्रकाश : जीवनी (2) जयप्रकाश की विचारधारा (3) तथागत (4) चिता के फूल।

1948-50— (1) गेहूँ और गुलाब (2) नेत्रदान (3) सीता की माँ (4) नई नारी (5) संघमित्रा (6) मशाल (7) हवा पर (8) बेटे हों तो ऐसे (9) बेटियाँ हों तो ऐसी (10) हमारे पुरखे (11) हमारे पड़ोसी (पीछे ये ही दो पुस्तकें 'अमर कथाएँ' नाम से चार भागों में प्रकाशित) (12) पृथ्वी पर विजय (13) प्रकृति पर विजय (14) संसार की मनोरम कहानियाँ (15) हम इनकी संतान हैं (16) इनके चरण-चिह्नों पर (17) अनोखा संसार (18) अपना देश, तीन भाग।

1951 — (1) पैरों में पंख बाँधकर (2) कार्ल मार्क्स (3) अमर ज्योति (4) नया समाज।

1952 — (1) पेरिस नहीं भूलती (2) उड़ते चलो, उड़ते चलो (3) अमृत की वर्षा (4) जीव-जन्तु।

1953-54— (1) वन्दे वाणी विनायकौ (2) मुझे याद है (3) विजेता (4) कुछ मैं, कुछ वे।

1955 — इन पुस्तकों पर काम हो रहा है - (1) ज़ंजीरें और दीवारें (2) धरती की धड़कनें (3) मेरी डायरी।

जेल यात्रा : 1930 — छह महीने की सज़ा, हज़ारीबाग़ जेल।

1932 — डेढ़ वर्ष की सज़ा, हज़ारीबाग़ और पटना कैम्प जेल।

1937 — तीन महीने की सज़ा, हज़ारीबाग़ जेल।

1938 — दो दिन हाजत में – सिटी जेल, पटना जेल।

1939 — दो सप्ताह की सजा – पटना जेल।

1940 — एक वर्ष की सजा – हज़ारीबाग जेल। (इसी दरम्यान एक मुकदमे के सिलसिले में छपरा जेल, सिवान जेल)

1941 — छह महीने की सज़ा, हाज़ीपुर जेल, मुज़फ़्फ़रपुर जेल।

1942 — डेढ़ साल की सज़ा, सीतामढ़ी जेल।

1942 — छह महीने की सज़ा, मधुबनी जेल, दरभंगा जेल।

अगस्त 1942 से जुलाई 1945 तक : हज़ारीबाग़ जेल में तीन वर्ष तक नज़रबंद।

संस्थाओं से सम्बन्ध : बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापन (1919) में सहयोग : उसके सहकारी मंत्री, संयुक्त मंत्री। 1946 से 1959 तक प्रधान मंत्री फिर सभापति (1951)। श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी के सभापतित्व काल में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री (1929)।

1920 से 1946 तक कांग्रेस में। पटना शहर कांग्रेस कमेटी के सभापति। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य। 1929 में बिहार राजनीतिक कान्फ्रेन्स (मुंगेर) में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश किया, जो नेताओं के विरोध के बावजूद पास हुआ। फ़ैजपुर कांग्रेस में ज़मींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पेश किया। 1937 के आम चुनाव के बाद दिल्ली में संयोजित नेशनल कान्वेन्शन के सदस्य। बिहार सोशलिस्ट पार्टी (1931) के संस्थापकों में। अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पहली कार्य-समिति के सदस्य। 1950 में सोशलिस्ट पार्टी (बिहार) के पार्लियामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष। सन् 1957 ई. के आम चुनाव में कटरा (मुज़फ़्फ़रपुर) क्षेत्र सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में बिहार विधान सभा के सदस्य निर्वाचित। सन् 1967 ई. में प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की सम्मानोपाधि से विभूषित।

जनवरी 1968 ई. में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित।

निधन : 7 सितम्बर 1968 ई. को।

बेनीपुरी की रचनाओं की सूची

1.	माटी की मूरतें	(शब्द-चित्र)
2.	लाल तारा	(शब्द-चित्र)
3.	गेहूँ और गुलाब	(शब्द-चित्र)
4.	पतितों के देश में	(उपन्यास)
5.	कैदी की पत्नी	(उपन्यास)
6.	चिता के फूल	(कहानी-संग्रह)
7.	अम्बपाली	(नाटक)
8.	तथागत	(नाटक)
9.	विजेता	(नाटक)
10.	सीता की माँ	(रूपक)
11.	संघमित्रा	(एकांकी)
12.	अमर ज्योति	(रेडियो रूपक)
13.	सिंहल विजय	(एकांकी)
14.	शकुन्तला	(रेडियो रूपक)
15.	रामराज्य	(रेडियो रूपक)
16.	नेत्रदान	(एकांकी)
17.	गाँव के देवता	(रेडियो रूपक)
18.	नया समाज	(एकांकी)
19.	ज़ंजीरें और दीवारें	(संस्मरण एवं निबंध)
20.	मुझे याद है	(संस्मरण एवं निबंध)
21.	मेरी डायरी	(संस्मरण एवं निबंध)
22.	नयी नारी	(संस्मरण एवं निबंध)
23.	सुनिये	(संस्मरण एवं निबंध)
24.	मशाल	(संस्मरण एवं निबंध)

25. वन्दे वाणी विनायकौ (संस्मरण एवं निबंध)
26. कुछ मैं कुछ वे (संस्मरण एवं निबंध)
27. अमर कथाएँ : मनु से गाँधी तक (बाल साहित्य)
28. अमर कथाएँ : लाओत्से से लेनिन तक (बाल साहित्य)
29. हम इनकी संतान हैं (बाल साहित्य)
30. पृथ्वी पर विजय (बाल साहित्य)
31. प्रकृति पर विजय (बाल साहित्य)
32. संसार की मनोरम कहानियाँ (बाल साहित्य)
33. इनके चरण-चिह्नों पर (बाल साहित्य)
34. बगुला भगत (बाल साहित्य)
35. बिलाई मौसी (बाल साहित्य)
36. बेटे हों तो ऐसे (बाल साहित्य)
37. शिवाजी (बाल साहित्य)
38. अमृत की वर्षा (बाल साहित्य)
39. जीव जन्तु (बाल साहित्य)
40. झोंपड़ी से महल (बाल साहित्य)
41 सियार पाँड़े (बाल साहित्य)
42. हिरामन तोता (बाल साहित्य)
43. बेटियाँ हों तो ऐसी (बाल साहित्य)
44. गुरु गोविन्द सिंह (बाल साहित्य)
45. बच्चों के बापू (बाल साहित्य)
46. अनोखा संसार (बाल साहित्य)
47. सतरंगा धनुष (बाल साहित्य)
48. कार्ल मार्क्स (जीवनी)
49. रोजा लुक्जेमबुर्ग (जीवनी)
50. जयप्रकाश : जीवनी (जीवनी)
51. रूस की क्रांति (राजनीतिक विवरण)
52. लाल चीन (राजनीतिक विवरण)
53. जयप्रकाश की विचारधारा (राजनीतिक विवरण)
54. विद्यापति की पदावली (सम्पादन)

55. रवीन्द्र भारती (सम्पादन)
56. इक़बाल (सम्पादन)
57. बिहारी सतसई (सम्पादन)
58. टुलिप्स (सम्पादन)
59. जोश (सम्पादन)
60. पैरों में पंख बाँधकर (यात्रा-वृत्तांत)
61. पेरिस नहीं भूलती (यात्रा-वृत्तांत)
62. उड़ते चलो—उड़ते चलो (यात्रा-वृत्तांत)
63. मेरे तीर्थ (यात्रा-वृत्तांत)

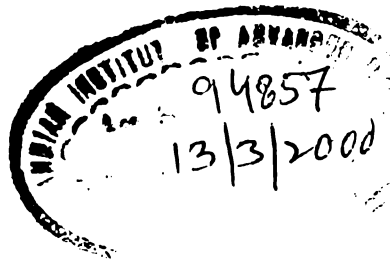

रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी के यशस्वी लेखक थे। उन्होंने हिन्दी गद्य की प्रायः सभी विधाओं में लेखन-कार्य किया है, किन्तु अपने नाटकों और शब्द-चित्रों के कारण उन्हें अधिक ख्याति मिली है। उनकी 'अम्बपाली' और 'माटी की मूरतें' न केवल हिन्दी में, बल्कि भारतीय भाषाओं में भी अपनी विशिष्ट पहचान बना चुकी हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया और हिन्दी पत्रकारिता को ऊँचाई दी। एक अद्वितीय शैलीकार के रूप में भी उन्हें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है।

बेनीपुरी के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष राजनीति से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भागीदारी के कारण लगभग आठ वर्षों तक उन्हें जेल-जीवन बिताना पड़ा। समाजवादी आन्दोलन में उनकी उल्लेखनीय भूमिका थी। आज़ादी के बाद वे चुनाव भी लड़े और सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में बिहार विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व में साहित्य और राजनीति का सुन्दर संयोग था। उन्होंने दोनों के बीच संतुलन क़ायम रखा। यह बेनीपुरी की विशेषता थी। अपने संघर्षशील राजनीतिक जीवन की अनुभव-सम्पदा को उन्होंने सर्जना का आधार बनाया। उनका जीवन और साहित्य पाठकों के लिए जिज्ञासा का विषय है।

यह पुस्तक बेनीपुरी के सम्बन्ध में जिज्ञासु पाठकों को कुछ ज़रूरी जानकारी दे सके, यही इस निबन्ध का उद्देश्य है।

ISBN 81-7201-974-2

Library IIAS, Shimla
H 814.8 B 437 R
00094857